वैदिक धर्म

क्रमांक ३१५

वर्ष २७ | माघ, विक्रमीय संवत् २००२, मार्च १९४६ | अङ्क ३

विश्वका एक सम्राट्

नि षसाद धृतव्रतो वरुणः पस्त्यास्वा । साम्राज्याय सुक्रतुः ॥
अतो विश्वान्यद्भुता चिकित्वाँ अभि पश्यति । कृतानि या च कर्त्वा ॥
(ऋ. १।२५।१०-११)

"नियमोंके अनुसार चलनेवाले ज्ञानी और हरएक कर्म करनेमें कुशल (विश्वका एकही सचा सम्राट् प्रभु) अपने (विश्वव्यापक) साम्राज्यका शासन चलानेके लिये सब प्रजाजनोंके (अन्तर्यामी हृदयोंमें) बैठे हैं। जो (भूतकालमें) हो चुका था, (जो इस समय हो रहा है,) और जो भविष्यमें होगा, उन सब अद्भुत कार्योंका निरीक्षण वही (इस अपने स्थानसे) करते हैं।"

यद्यपि ईश्वर विश्वका एकमात्र प्रभु है, तथापि वह सबका नियमन सुनियमोंसे ही करता है। मनमाना व्यवहार कभी नहीं करता। उसके विश्वव्यापक साम्राज्यमें सब कुछ नियमानुसार होता रहता है। यह देखकर यहांके राजा महाराजा आदिकोंको भी उचित है कि वे मर्जी चाहे तैसा स्वैर बर्ताव कभी न करें, धर्मानुकूल अपना आचार व्यवहार करें, तथा प्रजाजन अपनी उन्नतिके लिये जो धर्मानुकूल कर रहे होंगे, उनमें विघ्न न करें, प्रत्युत उनके सब शुभव्यवहारोंका पोषण करें। प्रजाकी उन्नति करना ही एकमात्र राजाका कर्तव्य है, यह राजाको स्मरण रखना चाहिये। ऐसे राजाकी उन्नति होगी।

गीताके महोत्सव

इस वर्ष इस भारतवर्षमें अनेक गीताके महोत्सव देखनेका सौभाग्य हमें प्राप्त हुआ। इस भारतवर्षमें गीतापर प्रेम करनेवाले गीताके भक्त अनंत हैं और वे अपनी श्रद्धा गीताका महोत्सव करके व्यक्त करते हैं। इस वर्ष हमने जो महोत्सव देखे उनमें मुख्यतया निम्नलिखित बातें देखीं—

१ बडी गाडियोंपर (लाऊड स्पीकर) ध्वनिक्षेपक यंत्रोंसे गीताका पाठ कराया जाता था। गलीगलीमें इस तरह गीता का ध्वनि गूंज रहा था। ये गाडीयां नगरोंके प्रायः सब मार्गपर घुमायीं गयीं।

२ एक उत्सवमें १०८ गीतापाठक बिठलाये गये थे, जिनका कार्य गीताका पाठ करनाही था, इस तरह एक दिनमें सहस्रसे अधिकवार गीताका पाठ हुआ।

३ दूसरे एक उत्सवमें दिन और रातभर गीताके श्लोक बोल बोलकर घी भात आदिका हवन कराया जा रहा था। इस तरह एक दिनमें अठारह बार गीताके सब श्लोकों द्वारा हवन किया गया।

४ कई उत्सवोंमें गीताको कण्ठ बोलनेवाले विद्यार्थियोंको पारितोषिक दिये गये।

५ एक महोत्सवमें गीता ग्रन्थको चार श्वेत घोडोंके रथमें सुन्दरवस्त्रोंसे अलंकृत करके बडा भारी जलूस निकाला था। यह रथ सब नगरमें घुमाया गया और इसपर फूल और पैसे बिखेरे गये। हजारों लोग जलूसमें शामील हुए थे। बडी रौनक हो गयी थी।

६ एक स्थानपर बडा भारी महोत्सव किया गया जिसमें दस हजारकी संख्यामें स्त्रीपुरुष जमा हुए थे। नगरमें १८ कमानियां (आर्चिस्) बनायी थीं और इनके नीचेसे गीताजीका जलूस बडीरौनकके साथ चलाया गया था। अठारह अध्यायोंके नाम इन कमानियोंको दिये गये थे। जलूसके अन्तमें गीताका पाठ किया गया।

७ एक स्थानपर १८ श्वेत बैलोंकी गाडीमें गीताका जलूस निकाला था। सहस्रोंकी संख्यामें जनता शामील हुई थी।

८ एक स्थानपर गीता उत्सवके दिन गीताके ७०० पाठ कराये गये, क्यों कि गीताके ७०० श्लोक हैं। पाठ सुननेके लिये सैंकडों मनुष्य इकट्ठे हुए थे।

९ एक गीता महोत्सवमें विश्वरूप दर्शन (गी. अ. ११) का एक बडाभारी चित्र सभाके स्थानपर रख दिया था। एकही कृष्णकी मूर्तिको सैंकडों मानव पशु पक्षियोंके मुख चिपकाये गये थे, जिसको विश्वरूप करके पूजा गया था। बडी श्रद्धासे लोग आकर इसकी पूजा कर रहे थे।

१० एक गीता महोत्सवमें कृष्ण और अर्जुनके मनुष्यके कदकी मूर्तियाँ रखी थी जो पूजी जाती थी। (करनेवालेकी अज्ञानताके कारण अर्जुनका भी नीलाही रंग बताया था, अर्जुन गौरवर्ण था यह इनको पता नहीं था। गौरकोही अर्जुन कहते हैं।)

११ इन उत्सवोंमें दस पांच सहस्र जनसंख्या सहजहीसे संमिलित होती थी और बडी श्रद्धासे व्याख्यान ४।४ या ५।५ घण्टे बैठकर सुनती थी। ऐसा प्रतीत होता था कि ये सब गीताके उपदेशका आचरण करनेमें बडेही उत्सुक हैं। स्त्रियां भी सहस्रोंकी संख्यामें जमा होती थी, फिर पुरुष जमा होते थे इसमें क्या आश्चर्य है ?

इस वर्ष ये ऐसे विशाल उत्सव देखकर हमें बडा ही हर्ष हुआ। पर कुच्छ विचार करनेसे मालूम हुआ कि क्या इसीसे गीताधर्मका पुनरुद्धार हो जायगा ? भगवान् श्रीकृष्णने जो गीता कही, क्या वह ऐसे जलूसोंके लिये कही थी ? भगवान् श्रीकृष्णके सामने यदि अर्जुन गीताका ऐसा जलूस निकालता, या गीताका पाठ ही करता रहता अथवा गीताके श्लोकोंके साथ हवन ही करता, तो भगवान्‌को कैसा लगता ?

अर्जुनने इनमेंसे एक भी कार्य नहीं किया, गीताके कथनके अनुसार उन्होंने आचरण किया जिसका फल उसको स्वराज्य प्राप्ति रूप मिला। आज जलूस निकालकर लोग कहते हैं कि गीताका उद्धार हम कर रहे हैं !!!

इन सहस्रों मानवोंमें एक भी ऐसा नहीं मिला कि जो गीता-बोधको आचरणमें लानेके लिये उत्सुक है ! क्या गीता केवल जलूसके लिये ही है ?

ॐ

ऋग्वेदका सुबोध भाष्य

(३)

शुनःशेप ऋषिका दर्शन

(ऋग्वेदका षष्ठ अनुवाक)

—०—

लेखक

ब्रह्मर्षि पण्डित श्रीपाद दामोदर सातवळेकर,

अध्यक्ष स्वाध्याय-मण्डल, औंध (जि० सातारा)

संवत् २००२

मूल्य १) रु०

मुद्रक और प्रकाशक- **वसंत श्रीपाद सातवळेकर,** B. A.
भारत-मुद्रणालय, औंध (जि. सातारा)

शुनःशेप ऋषिका तत्त्वज्ञान

ऋग्वेदमें शुनःशेप ऋषिके तत्त्वज्ञानके १०७ मंत्र हैं। इनका ब्योरा यह है—

प्रथम मण्डलमें

षष्ठ अनुवाक			मंत्रसंख्या
सूक्त २४			
	कः	१	
	अग्निः	१	
	सविता	३	
	वरुणः	१०	१५
,, २५	वरुणः		२१
,, २६	अग्निः		१०
,, २७	,,	१२	
	देवाः	१	१३
,, २८	इन्द्रः	४	
	उलूखलं	२	
	,, मुसले	२	
	प्रजापति-		
	हरिश्चन्द्रः	१	
	(चर्म सोमो वा)		९
,, २९	इन्द्रः		७
,, ३०	इन्द्रः	१६	
	अश्विनौ	३	
	उषाः	३	२२
नवम मण्डलमें			
सूक्त ३	सोमः		१०

कुल मंत्रसंख्या १०७

देवतानुसार मंत्र-संख्या

१	वरुणः	३१
२	इन्द्रः	२७
३	अग्निः	२३
४	सोमः	१०
५	सविता	३
६	अश्विनौ	३
७	उषाः	३
८	उलूखलं	२
९	उलूखलमुसले	२
१०	देवाः	१
११	कः	१
१२	प्रजापतिः	१
		१०७

शुनःशेपके १०७ मंत्र हैं। इनमें इस ऋषिका तत्त्वज्ञान है अतः इन मंत्रोंका विचार करनेसे इसके तत्त्वज्ञानका पता लग सकता है।

शुनःशेपकी कथा

शुनःशेपकी कथा ऐतरेय ब्राह्मणमें है। वह विशेष विस्तारके साथ इस ग्रंथके अन्तमें उद्धृत की है और आवश्यक अनुवाद भी वहां दिया है। पाठक इसका विचार करें। इसका संक्षिप्त वृत्त ऐसा है—

'वेधसपुत्र हरिश्चन्द्रको सौ धर्मपत्नियाँ थीं, तथापि इसको पुत्र नहीं हुआ। नारदने कहा कि वरुणकी उपासना करो। तब राजा हरिश्चन्द्र वरुणकी उपासना करने लगा। पुत्र होनेपर उसका वरुणके लिए समर्पण करूंगा, ऐसा उसने कहा। वह वरुणने माना। पश्चात् हरिश्चन्द्रको पुत्र हुआ, उसका नाम रोहित रखा गया। वरुणने पुत्रकी मांग की, पर हरिश्चन्द्र टालने लगा। तब क्रुद्ध होकर हरिश्चन्द्रके पेटमें वरुणने उदररोग उत्पन्न किया। तब रोहित अजीगर्त ऋषिके पास आया। इस ऋषिके तीन पुत्र थे। उनमेंसे बीचका पुत्र शुनःशेप था। सौ गौवें देकर शुनःशेपको उसके पितासे रोहितने खरीद लिया। पश्चात् इसका वरुणके लिए बली देनेके लिए यज्ञ शुरू हुआ। उस यज्ञमें होता विश्वामित्र था, अध्वर्यु जमदग्नि था, ब्रह्मा वसिष्ठ था और उद्गाता अयास्य था।

हरिश्चन्द्रने वरुणसे कहा कि बली लाया है, उसने क्षत्रिय पुत्रके स्थानपर ब्राह्मणपुत्रका बलि हो रहा है यह देखकर आनंद माना।

शुनःशेपको यूपके साथ बांधनेके लिए और सौ गायें लेकर उस का पिता तैयार हुआ। और सौ गायें लेकर वही पिता शुनःशेप का वध करनेके लिए सिद्ध हुआ। जब अपना पिताही अपने गले-पर छुरी चलानेको तैयार हुआ तब शुनःशेप देवताओंकी प्रार्थना करने लगा। प्रजापतिसे प्रारंभ करके उषा देवतातक प्रार्थना की, तब उसके पाश टूटने लगे और हरिश्चन्द्रका उदररोग भी कम होने लगा। अन्तमें शुनःशेप छोड दिया गया और हरिश्चन्द्र भी रोगमुक्त हुआ।'

इस तरह यह यज्ञ पूर्ण हुआ। शुनःशेप अपने पितापर असं-तुष्ट हुआ और विश्वामित्रको दत्तक हुआ। विश्वामित्रने उसका नाम 'देवरात' रखा। पर ये सूक्त शुनःशेपकी बद्ध अवस्थामें गाये होनेके कारण इनका ऋषि शुनःशेपही है। देवरात तो उसका

नाम बहुत पीछेसें हुआ है। सूक्त गानेके समय वह 'शुनःशेप' ही था।

यह कथा असत्य है

यह कथा काल्पनिक और असत्य है। इस कथाके असत्य होनेके अनेक कारण हैं—

१ सूक्तके प्रारंभिक (ऋ. १।२४।१-२) दो मंत्रोंमें ही पिता-माताके दर्शन करनेके विषयमें शुनःशेप बडा उत्सुक दीखता है। यदि तीन सौ गौवें लेकर पुत्रका वध करनेवाला पिता होगा, तो उसके दर्शन करनेकी उत्सुकता पुत्रमें होनेकी संभावना नहीं हो सकती। इसलिए सूक्त २४ के पहिले दो मंत्र इस कथाका असत्यत्व बता रहे हैं।

२ शुनःशेप एक ही युवा था। पर इन सूक्तोंमें वह अपने आपको ' मैं ' ऐसा न कहता हुआ ' हम सब ' ऐसे शब्द प्रयुक्त करता है। प्रथम (ऋ.१।२४) सूक्तमें ११ वार, द्वितीय (ऋ. १।२५) सूक्तमें ६ वार, तृतीय (ऋ. १।२६) सूक्तमें १० वार, चतुर्थ (ऋ. १।२७) सूक्तमें ९ वार इस तरह ३६ वार बहुवचनमें प्रयोग हुए हैं। वहां सर्वत्र ' हम सब ' ऐसा अर्थ है। एक दो उदाहरण देखिये-

(अ) **नः आयुः मा प्रमोषीः** (ऋ. १।२४।११)= हम सबकी आयु मत् कम करो।

(आ) **वरुणः अस्मान् मुमोक्तु** (ऋ. १।२४।१२)= वरुण हम सबको मुक्त करे।

(इ) **अस्मत् पाशं उच्छ्रथाय** (ऋ. १।२४।१५)= हम सबसे पाश दूर हों।

इस तरहके वाक्य बता रहे हैं कि इन सूक्तोंका आशय किसी एक मानवको यूपसे छुडाना इतना ही नहीं है, प्रत्युत संपूर्ण जनताके बंध दूर करना ही इनका मन्तव्य है। अतः इन सूक्तों को किसी एक ऋषिपुत्रपर चढाना योग्य नहीं है। इन सूक्तोंमें एक वचनके प्रयोग भी हैं। अतः केवल बहुवचन प्रयोग कहनेकी प्रथा ही उस समय थी ऐसा नहीं कहा जा सकता।

३ शुनःशेपका पिता अजीगर्त था। उसने ३०० गौवें लेकर उसको बेचा, वधस्तंभके साथ बांधा और उसके गलेपर छुरी रखनेके लिये सिद्ध हुआ, ऐसा माननेके लिये इन सूक्तोंमें कोई प्रमाण नहीं है।

४ यह हरिश्चन्द्र कपटी, मिथ्यावचनी व स्वार्थी दीखता है। वह अपने पुत्रके संरक्षण करनेके लिये ब्राह्मणकुमारका बली देनेके लिये तैयार हुआ। सत्य-प्रतिज्ञ पौराणिक हरिश्चन्द्रकी कथा इससे शतगुणा अधिक अच्छी है। इन सूक्तोंमें इस राजाका कोई संबंध दीखता नहीं है।

इस तरह विचार करनेपर यह कथा कपोलकल्पित और असंबद्ध ही प्रतीत होती है। इसलिये यह विश्वास पात्र नहीं है।

५ शतपथ ब्राह्मणमें नरमेधमें बलिको मुक्त करके छोड देना लिखा है। अर्थात् नरमेधमें किसीका वध होनेकी संभावना ही नहीं दीखती, फिर यदि शुनःशेप यूपके साथ बंधा गया होगा, तो भी उसका वध होनेकी संभावना ही नहीं थी। अतः मुक्त होनेके लिये प्रार्थना करनेकी आवश्यकता ही नहीं है। शतपथ के साथ यह कथा इस तरह टकराती है। (देखो शतपथ ब्रा. १३।६।२।१३)

इस कारण ये सूक्त सर्व साधारण मानवोंके बंधनसे छूटनेका विचार कर रहे हैं ऐसा मानना योग्य है। पाठक इस दृष्टीसे इनका विचार करें।

एक देवताकी भक्ति

पूर्वोक्त कथामें कहा है कि एक देवतासे कहा कि दूसरे देवताकी उपासना करो। इस तरह शुनःशेप एकसे दूसरे और दूसरेके बाद तीसरे देवताकी भक्ति करने लगा। कथाका तथा भाष्यकारोंका यह कथन सत्य नहीं है। क्योंकि एक ही सूक्तमें एक ही देवताके लिये अनेक नाम लगाये हैं और बताया है कि ' अनेक नामोंसे उद्दिष्ट देवता एक ही है। '

प्रथम (ऋ.१।२४) सूक्तमें अग्नि, वरुण, सविता, आदित्य, आदि नाम एकही उपास्य देवके आये हैं। इसी तरह सर्वत्र समझना उचित है। इसलिए पहिली देवताको छोड दिया और दूसरी देवताकी भक्ति करने लगा, यह कल्पना अयोग्य है। सब देवताएं सूर्यके विविधरूप, कालभेदसे दिखाई देनेवाले रूप माननेकी अवस्थामें भी एकही सूर्य देव अन्य सब काल्पनिक विभिन्न देवोंके अधिष्ठानमें रहनेके कारण एकही उपास्य देव है यही सिद्धान्त स्थिर होता है। इसलिए उक्त कथामें कही हुई कल्पना विश्वास योग्य नहीं है

यह कथा पुराणोंमें है

यह शुनःशेपकी कथा अनेक पुराणोंमें है। वाल्मीकीय रामा-

यण बालकाण्ड सर्ग ६१-६२ में, विष्णुपुराण ४।७ में, महाभारत अनुशासन पर्व ३ में, देवी भागवत ७।१४-१७ में, श्रीमद्भागवत ९।७;१६में, महाभारत शान्तिपर्व २९४; हरिवंश १।२७; ब्रह्मपुराण १० इतने स्थानोंमें यह कथा है। ऐतरेय ब्राह्मण ७।३ में तथा सांख्यायन श्रौत्रसूत्रमें १५।२०-२१; १६।११,२ यह कथा है। इतने स्थानोंमें यह कथा होनेसे इस कथाके लिए बड़ाही महत्त्व प्राप्त हुआ है।

उत्तरीय ध्रुवमें दीर्घ रात्रीके पूर्व अस्त होनेवाले सूर्यपर यह रूपक है ऐसा कईयोंका मत है। गौवोंके मोलमें पुत्रका विक्रय करनेका अर्थ सूर्यकिरणोंकी संख्या कम होना है। इत्यादि बातें यहां घट सकती हैं।

शरीरमें रोहितकी कथा

शरीरमें रोहितकी कथा कई घटाते हैं। रोहित पद 'लोहित' बनता है और यह 'रक्त, रुधिर, खून' का वाचक है। शरीरमें खूनका सर्वत्र दौरा होता है और उसमें लोह (लोह-इत) रहता है इस कारण उसको लोहित कहते हैं। यह रोहित हरिश्चन्द्रका पुत्र है अर्थात् 'हरित्-चन्द्र' हरे रंगसे युक्त बने रक्तके परिवर्तनसे लोहित बनता है। शरीरमें घूमकर आया रक्त हरे रंगका रहता है, वही 'हरित्-चन्द्र' है। इसमें शुद्ध वायु मिलनेसे वही लाल रंगका बनता है। यही हरित्-चन्द्रका (हरिश्चन्द्रका) लोहित बनना है, शरीरमें यह घटना बनती है। हरएक रक्तके दौरेमें हरे रंगका खून बनता है और वह फेंफडोंमें पुनः शुद्ध होकर लालरंगका बन जाता है। प्रत्येक दौरेमें खूनका यह रूपान्तर होता रहता है।

अब रोहितके लिए अजीगर्त पुत्रका कुर्बान होना यहां विचारणीय है। 'अजी-गर्त' यह 'अ-जीर्ण-गर्त' है, जहां अपचित अन्न रहता है, वह अजीर्ण हुए अन्नका गढा, पेटही है। इस पेटमें अन्न पकता और उसका रस होता रहता है। यह रसही उस अन्नका अथवा अजीर्ण-गर्तका पुत्र है। इस अन्नरसका एक एक अणु रक्तके रूपमें परिवार्तित होता जाता है, यही अजीगर्त पुत्रकी रोहितकी वृद्धिके लिए कुर्बानी अथवा बलिदान है।

इसी तरह यह कथा मूल रूपमें शारीरिक घटनापर रची गयी है। पाठक इसका भी विचार करें।

शुनःशेपका गोत्र

भृगुके कुलमें ऋचीकका जन्म हुआ। इस ऋचीकका बीचका पुत्र शुनःशेप है। ऋचीकका ही प्रायः नाम अजीगर्त है। इस शुनःशेपके भाई शुनःपुच्छ और शुनोलांगूल थे। इसका वंश ऐसा है-

भृगु
|
ऋचीक (अजीगर्त)
|
शुनःपुच्छ | शुनःशेप | शुनोलांगूल

शुनःशेप
(आजीगर्तिः)
(सौयवसिः)
(वैश्वामित्रो देवरातः)

विश्वामित्रने इसे दत्तक पुत्र माना इसलिये इसका गोत्र 'वैश्वामित्र' हुआ अतः इसका नाम ऐसा लगता है- **'आजीगर्तिः शुनःशेपः, स कृत्रिमो वैश्वामित्रो देवरातः'** अर्थात् अजीगर्तका पुत्र शुनःशेप था, वही दत्तक होनेके कारण विश्वामित्रका पुत्र देवरात हुआ।

शुनःशेपका मंत्रोंमें उल्लेख

'शुनःशेप' नाम वेद मंत्रोंमें आया है, देखिये वे मंत्र ये हैं-

१ **शुनःशेपो यमह्वत् गृभीतः सो अस्मान् राजा वरुणो मुमोक्तु।** (ऋ. १।२४।१२)= बंधनमें पडे शुनःशेपने जिसकी प्रार्थना की थी, वह राजा वरुण हम सबको बंधनसे मुक्त करे।

२ **शुनःशेपो ह्यह्वत् गृभीतः त्रिष्वादित्यं द्रुपदेषु बद्धः।** (ऋ. १।२४।१३)-तीन स्थानोंमें बंधा हुआ शुनःशेप आदित्यकी प्रार्थना करने लगा।

पहिले मंत्रभागसे ऐसा प्रतीत होता है कि यह मंत्र कोई और ही ऋषि कह रहा है। 'शुनःशेपने जिसकी प्रार्थना की थी वह वरुण हमें मुक्त करे। (१२)' इससे मुक्त होनेवाले शुनःशेपसे ऋषि भिन्न है ऐसा प्रतीत होता है। दूसरे मंत्रमें भी यही बात दीखती है— 'तीन स्थानोंमें बन्धे शुनःशेपने जिसकी प्रार्थना की थी वह इसके पाशोंको खोले और इसे मुक्त करे। (१३)' इसमें भी बोलनेवाला शुनःशेपसे भिन्न है अथवा शुनःशेप ही अपने आपको विभिन्न मानकर ऐसा बोल रहा होगा। इन दोनोंमें से कोई एक कल्पना यहां करनी चाहिये। शुनःशेपके सूक्तोंमें दोही बार इस ऋषिका नाम आया है। और एक स्थानपर

ऋग्वेदमें इसका नाम आता है वह मंत्र यह है-

शुनश्चित् शेपं निदितं सहस्रात् यूपादमुञ्चो अश- मिष्ट हि षः। एवास्मदग्ने वि मुमुग्धि पाशान् होतः चिकित्व इह तू निषद्य। (ऋ. ५।२।७)

'बंधनमें पडे शुनःशेपको, हे अग्ने! तुमने सहस्रोंमेंसे एक यूपसे छुडा लिया था, निःसन्देह उसने बडे ही कष्ट सहे थे। इसी तरह बंधनोंसे हम सबको मुक्त करो।'

यहां दिया मंत्र अत्रिगोत्रके कुमार ऋषिका अथवा जनगोत्रीय वृष ऋषिका है। यहां 'सहस्रात् यूपात्' कहा है। इसके अनेक अर्थ संभवनीय हैं। (१) सहस्रों यूपोंसे, (२) सहस्रस्तम्भवाले यूपसे, (३) सहस्रवार बंधे यूपसे, (४) सहस्र प्रकारसे बंधे यूपसे इ० कोई भी अर्थ लिया जाय, तो सहस्रवार बंधन होनेकी ध्वनि इससे निकलती है। '**अनेकजन्मसंसिद्धः**' (गी. ६।४५), '**बहूनां जन्मनां अन्ते ज्ञानवान् मां प्रपद्यते।**' (गीता ७।१९) अनेक जन्मोंके तपसे सिद्धिको प्राप्त होता है। अर्थात् अनेक जन्मतक बंधनका अनुभव करता है, उन बंधनोंके निवारणका यत्न करता है और पश्चात् बन्धनसे मुक्त होता है। वह भाव '**सहस्र यूप**' पदोंमें स्पष्ट दीखता है। 'यूप' बंधनका चिन्ह है और वह सहस्रगुणित या सहस्र प्रकारका है। इस रीतिसे शुनःशेपके बंधन सहस्रों थे, केवल वह एक ही यूपको और हरिश्चन्द्रके यज्ञमें बंधा गया था, ऐसी बात नहीं है।

उदुत्तमं वरुण पाशमस्मादिति शुनःशेपो वा एतामाजीगर्तिः वरुण-गृहीतोऽपश्यत्। तया वै स वरुणपाशादमुच्यत वरुणपाशामेवैतया प्रमुञ्चते। (काठक सं. १९।११।२७)

'उदुत्तमं' यह मंत्र अजीगर्त शुनःशेप ऋषिने देखा। इस मंत्रके पाठसे वरुणपाशसे उसकी मुक्तता हुई। जो इस मंत्रका पाठ करेगा वह पाशसे मुक्त होगा।' इसके अतिरिक्त चारों वेदोंके मंत्रोंमें शुनःशेपका नाम नहीं है।

अथर्ववेदमें शुनःशेपके मंत्र

ऋग्वेदके इन्हीं सूक्तोंके थोडेसे मंत्र अथर्ववेदमें लिए हैं। वे नीचे दिए हैं और उनका पाठभेद भी वहां दिया है—

ऋग्वेदमंत्र (शुनःशेप ऋषिः)	अथर्ववेदमंत्र (शुनःशेप ऋषिः)
	६।२५।१-३ (न ऋग्वेदीयाः)
	७।८३।१-२ (न ऋग्वेदीयाः)
उदुत्तमं० (ऋ.१।२४।१५)	उदुत्तमं. ३
	४ (न ऋग्वेदीयः)
१।३०।७-९	२०।२६।१-३
१।३०।४-६	२०।४५।१-३
१।२९।१-७	२०।७४।१-७
१।३०।१३-१५	२०।१२२।१-३

अथर्ववेदमें २३ मंत्र शुनःशेपके हैं। इनमेंसे १७ मंत्र ऋग्वेदके हैं। शेष ६ मंत्र इस समय ऋग्वेदमें नहीं मिलते हैं। जो ऋग्वेदमें नहीं है उन ६ मंत्रोंका अर्थ इस पुस्तकके अन्तमें दिया है। अथर्ववेदके मंत्रोंसे तो यह बात अतिस्पष्ट हो रही है कि ये सूक्त शुनःशेपके यूपसे छुटकारेका वर्णन नहीं करते, प्रत्युत (अथर्व० ६।२५) गण्डमालासे निवृत्त होनेका उपाय बताते हैं और (अथर्व० ७।८३) सर्व साधारण पापसे, दुष्ट स्वप्नसे तथा नाना प्रकारके अन्यान्य कष्ट दूर करनेका उपाय सोच रहे हैं। तथा सामुदायिक उपासना द्वारा सबके पुण्यलोक-गमनका मार्ग बताते हैं। केवल शुनःशेपके ही बंधनसे निवृत्तिका यहां विषय नहीं है, प्रत्युत सर्व सामान्य मानवोंके बन्धनोंकी निवृत्तिका विचार इन मंत्रोंमें है, अतः इन मंत्रोंका विचार सर्व सामान्य दृष्टीसेही करना चाहिये। आशा है कि पाठक इन सूक्तोंका विचार इस दृष्टीसे करेंगे और अपनी सर्व साधारण बन्धन-निवृत्तिका मार्ग जानकर उससे अपना लाभ उठावेंगे।

निवेदक

१५ फाल्गुन सं. २००२ श्रीपाद दामोदर सातवळेकर,
अध्यक्ष स्वाध्याय मण्डल
औंध (जि. सातारा).

शुनःशेप ऋषिका दर्शन

ऋग्वेदमें षष्ठ अनुवाक

(१) नामस्मरण

(ऋ. १।२४) आजीगर्तिः शुनःशेपः स कृत्रिमो वैश्वामित्रो देवरातः । १ कः (प्रजापतिः); २ अग्निः, ३-५ सविता, ५ भगो वा, ६-१५ वरुणः । १,२,६-१५ त्रिष्टुप्, ३-५ गायत्री ।

कस्य नूनं कतमस्यामृतानां मनामहे चारु देवस्य नाम ।
को नो मह्या अदितये पुनर्दात् पितरं च दृशेयं मातरं च १
अग्नेर्वयं प्रथमस्यामृतानां मनामहे चारु देवस्य नाम ।
स नो मह्या अदितये पुनर्दात् पितरं च दृशेयं मातरं च २
अभि त्वा देव सवितरीशानं वार्याणाम् । सदावन् भागमीमहे ३
यश्चिद्धि त इत्था भगः शशमानः पुरा निदः । अद्वेषो हस्तयोर्दधे ४
भगभक्तस्य ते वयमुदशेम तवावसा । मूर्धानं राय आरभे ५
नहि ते क्षत्रं न सहो न मन्युं वयश्चनामी पतयन्त आपुः ।
नेमा आपो अनिमिषं चरन्तीर्न ये वातस्य प्रमिनन्त्यभ्वम् ६
अबुध्ने राजा वरुणो वनस्योर्ध्वं स्तूपं ददते पूतदक्षः ।
नीचीनाः स्थुरुपरि बुध्न एषामस्मे अन्तर्निहिताः केतवः स्युः ७
उरुं हि राजा वरुणश्चकार सूर्याय पन्थामन्वेतवा उ ।
अपदे पादा प्रतिधातवेऽकरुतापवक्ता हृदयाविधश्चित् ८
शतं ते राजन् भिषजः सहस्रमुर्वी गभीरा सुमतिष्टे अस्तु ।
बाधस्व दूरे निर्ऋतिं पराचैः कृतं चिदेनः प्र मुमुग्ध्यस्मत् ९
अमी य ऋक्षा निहितास उच्चा नक्तं ददृशे कुह चिद् दिवेयुः ।
अदब्धानि वरुणस्य व्रतानि विचाकशच्चन्द्रमा नक्तमेति १०
तत् त्वा यामि ब्रह्मणा वन्दमानस्तदा शास्ते यजमानो हविर्भिः ।
अहेळमानो वरुणेह बोध्युरुशंस मा न आयुः प्र मोषीः ११

तदिन्नक्तं तद् दिवा मह्यमाहुस्तदयं केतो हृद आ वि चष्टे ।
शुनःशेपो यमह्वद् गृभीतः सो अस्मान् राजा वरुणो मुमोक्तु १२
शुनःशेपो ह्यह्वद् गृभीतस्त्रिष्वादित्यं द्रुपदेषु बद्धः ।
अवैनं राजा वरुणः ससृज्याद्विद्वाँ अदब्धो वि मुमोक्तु पाशान् १३
अव ते हेळो वरुण नमोभिरव यज्ञेभिरीमहे हविर्भिः ।
क्षयन्नस्मभ्यमसुर प्रचेता राजन्नेनांसि शिश्रथः कृतानि १४
उदुत्तमं वरुण पाशमस्मदवाधमं वि मध्यमं श्रथाय ।
अथा वयमादित्य व्रते तवानागसो अदितये स्याम १५

अन्वय— (वयं) अमृतानां कतमस्य नूनं कस्य देवस्य चारु नाम मनामहे ? कः नः मह्यै अदितये पुनः दात्, (तेन) पितरं च मातरं च दृशेयम् ॥ १ ॥

अर्थ-(हम) अमर देवोंमेंसे किस देवके शुभनामका मनन करें ? कौन (देव भला) हमें बडी आदितिके पास पुन: देगा, (जिससे मैं) पिताको और माताको देख सकूं ॥१॥

वयं अमृतानां प्रथमस्य अग्नेः देवस्य चारु नाम मनामहे । सः नः मह्यै अदितये पुनः दात्, (तेन) पितरं च मातरं च दृशेयम् ॥ २ ॥

हम अमर देवोंमें पहले अग्नि देवके शुभनामका मनन करेंगे । वह हमें बडी आदितिके पास पुनः देगा, (जिससे मैं) पिताको और माताको देख सकूंगा ॥२॥

हे सदा अवन् सवितः देव ! वार्याणां ईशानं त्वा भागं अभि ईमहे ॥ ३ ॥

हे सर्वदा सुरक्षा करनेवाले सविता देव ! (तुम) स्वीकार करने योग्य धनोंका स्वामी हो, (इसलिये) तुम्हारे पास उपभोग के योग्य धनको हम मांगते हैं ॥३॥

यः हि चित् इत्था शशमानः, पुरा निदः अद्वेषः, भगः ते हस्तयोः दधे ॥ ४ ॥

जो इसतरहसे प्रशंसायोग्य, निंदकोंसे दूर रहनेवाला और शत्रु जिसके पास नहीं पहुंचते, ऐसा भाग्य तुमने अपने दोनों हाथोंसे धारण किया है ॥४॥

ते वयं, भगभक्तस्य तव अवसा उदशेम, रायः मूर्धानं आरभे ॥ ५ ॥

वे हम, (तुम) भाग्यका बंटवारा करनेवाले (हो, अतः) तुम्हारी सुरक्षासे उन्नतिको प्राप्त करेंगे, तथा धनके शिखरपर (जाकर बडे कर्तव्योंका) आरंभ करेंगे ॥५॥

(हे वरुण !) पतयन्तः अमी वयः चन ते क्षत्रं नहि आपुः, सहः न, मन्युं (अपि) न (आपुः)। अनिमिषं चरन्तीः इमाः आपः न (आपुः), ये वातस्य अभ्वं प्रमिनन्ति (ते अपि) न (आपुः) ॥ ६ ॥

(हे वरुण देव !) ये उडनेवाले पक्षी कदापि तेरे पराक्रम (का ज्ञान) नहीं प्राप्त करते, तथा तेरा बल, तथा उत्साह भी नहीं (प्राप्त कर सकते)। सतत गमन करनेवाले ये जलप्रवाह नहीं (तेरी गतिको जान सकते), और जो वायुके वेगको रोकते हैं, (वे भी तेरे सामर्थ्यको लांघ) नहीं सकते ॥६॥

पूतदक्षः राजा वरुणः वनस्य स्तूपं अबुध्ने ऊर्ध्वं ददते । नीचीनाः स्थुः, एषां बुध्नः उपरि, अस्मे अन्तः केतवः निहिताः स्युः ॥ ७ ॥

पवित्र कार्यके लिये अपना बल लगानेवाला राजा वरुण वनके स्तंभको आधाररहित (आकाश)में ऊपर ही ऊपर धारण करते हैं । (इसकी शाखाएं) नीचे होती हैं, इनका मूल ऊपर है, इसके मध्यमें किरण (फैले) रहते हैं ॥७॥

राजा वरुणः सूर्याय पन्थां अनु-एतवै उ उरुं चकार हि । अपदे पादा प्रतिधातवे अकः । उत हृदया-विधः चित् अप-वक्ता ॥ ८ ॥

राजा वरुणने सूर्यके मार्गको (उसके) गमनके लिये विस्तृत बनाया है । स्थानरहित (अन्तरिक्षमें) पांव रखनेके लिये (स्थान भी) बना दिया है । निःसन्देह हृदयको कष्ट पहुंचानेवाले (शत्रुओं) को (वह देव) निषेध करता हुआ (सचेत करता है, वैसा न करनेकी आज्ञा देता है) ॥८॥

हे राजन् ! ते शतं सहस्रं भिषजः । ते सुमतिः उर्वी गभीरा अस्तु । निर्ऋतिं पराचैः दूरे बाधस्व । कृतं चित् एनः अस्मत् प्र मुमुग्धि ॥ ९ ॥

हे राजन् ! तेरे पास सैंकडों और हजारों औषधियाँ हैं । तेरी सुमति बडी गम्भीर है । दुर्गतिको नीचे मुख करके दूर प्रतिबंधमें रखो । किये हुए पापसे हमें मुक्त करो ॥९॥

अमी ऋक्षाः उच्चा निहितासः, ये नक्तं ददृशे, दिवा कुह चित् ईयुः ? वरुणस्य व्रतानि अदब्धानि, विचाकशत् चन्द्रमाः नक्तं एति ॥ १० ॥

ये नक्षत्र (सप्तऋषि) ऊपर (आकाशमें उच्च भागमें) रखे हैं, ये रात्रीके समय दीखते हैं, (पर ये) दिनमें कहां भला जाते हैं, वरुण राजाके नियम अटूट हैं, विशेष चमकता हुआ चन्द्रमा रात्रिमें आता है ॥१०॥

हे वरुण ! ब्रह्मणा वन्दमानः तत् त्वा यामि, यजमानः हविर्भिः तत् आशास्ते । अहेळमानः बोधि । हे उरुशंस ! नः आयुः मा प्रमोषीः ॥ ११ ॥

हे वरुण देव ! मन्त्रके अनुसार (तुम्हें) वन्दन करता हुआ (मैं) वही (दीर्घ आयु) तुम्हारे पास मागता हूँ, (जो) यज्ञ करनेवाला हविर्द्रव्य (के अर्पण) से चाहता है, निरादर न करता हुआ (तुम हमारी इस प्रार्थनाको) समझो । हे बहुतों द्वारा प्रशंसित हुए देव ! हमारी आयुको मत घटाओ ॥११॥

तत् इत् नक्तं, तत् दिवा, मह्यं आहुः । हृदः अयं केतः तत् आ वि चष्टे, गृभीतः शुनःशेपः यं (वरुणं) अह्वत्, सः राजा वरुणः अस्मान् मुमोक्तु ॥ १२ ॥

वही निश्चयसे रात्रीमें, (और) वही दिनमें (ज्ञानियोंने) मुझे कहा था, (मेरा) हृदय (—स्थानमें रहनेवाला) यह ज्ञान भी यही कह रहा है, (कि) बन्धनमें पडे शुनःशेपने जिस (वरुण देव)की प्रार्थना की थी, वही राजा वरुण हम सबोंको मुक्त करें ॥१२॥

त्रिषु द्रुपदेषु बद्धः गृभीतः शुनःशेपः आदित्यं अह्वत् हि, विद्वान् अदब्धः राजा वरुणः पाशान् वि मुमोक्तु, एनं अव सृज्यात् ॥ १३ ॥

तीन स्तंभोंमें बन्धे, (अतः) बन्धनमें पडे शुनःशेपने आदित्य (वरुण) देवकी प्रार्थना की थी कि ज्ञानी न दब जानेवाला राजा वरुण इसके पाशोंको खोल देवे और इसको मुक्त करे ॥१३॥

हे वरुण ! ते हेळः नमोभिः अव ईमहे । हविर्भिः यज्ञेभिः अव (ईमहे) । हे असुर प्रचेतः राजन् ! (अत्र) अस्मभ्यं क्षयन्, कृतानि एनांसि शिश्रथः ॥ १४ ॥

हे वरुण ! तेरे क्रोधको (हम अपने) नमस्कारोंसे दूर करते हैं । हविर्द्रव्योंके द्वारा (किये) यज्ञोंसे भी (तुम्हारे क्रोधको हम) दूर (हटाते हैं) । हे जीवनशक्तिका प्रदान करनेवाले ज्ञानी राजन् ! (यहां) हमारे (कल्याण करनेके लिये) निवास करते हुए तुम (हमारे) किये पापोंको शिथिल कर (के विनष्ट करो)॥१४॥

हे वरुण ! उत्तमं पाशं अस्मत् उत् श्रथाय । अधमं अव (श्रथाय) । मध्यमं वि (श्रथाय)। हे आदित्य ! अथ वयं तव व्रते अदितये अनागसः स्याम ॥ १५ ॥

हे वरुण ! (हमारे इस) उत्तम पाशको हमसे ऊपर (उठाकर) शिथिल करो । (हमारे इस) अधम (पाशको) नीचे (करके शिथिल करो)। (हमारे इस) मध्यम (पाशको) विशेष (ढीला कर दो) । हे अदितिपुत्र वरुण देव ! अब हम तुम्हारे व्रतमें (रहते हुए) आदितिके लिये (समर्पित होकर) पापरहित हो जायगे ॥१५॥

ईश्वरके सुन्दर नामका मनन

इस सूक्तके प्रारंभिक दो मन्त्रोंमें **'नाम मनामहे'** नामका मनन करनेका विषय आया है । **'देवस्य चारु नाम मनामहे ।'** ईश्वरके सुन्दर नामका मनन करेंगे । यहां ईश्वरका नाम सुन्दर है, और उस सुन्दर नामका मनन मुक्ति पानेकी इच्छा करनेवाले मुमुक्षुको करना आवश्यक है ऐसा कहा है । यहां नामकी सुन्दरता मननसे प्रतीत होनेवाली है, यह मानसिक सौंदर्य है, आंखसे प्रतीत होनेवाला नहीं है । इसके अतिरिक्त यहां **'नाम मनामहे'** नामका मनन कहा है, केवल नामके अक्षरोंका जाप ही नहीं कहा है । आजकल मञ्जिरोंकी ध्वनीके साथ

ईश्वरके नामका बारबार जाप भक्त लोक करते रहते हैं, परंतु यहाँ तो ' नामका मनन ' लिखा है। योगदर्शनमें भी ' **तज्जपस्तदर्थभावनं** ' सूत्रमें बताया है कि जप उसके अर्थपर अपनी भावना स्थिर करनेका नाम है। केवल अक्षर जपसे मन एकाग्र होनेमें कुछ न कुछ सहायता होती है, परंतु मनपर शाश्वत टिकनेवाला परिणाम होनेके लिये ' **नामका मनन** ' करना आवश्यक है। नामके मननका आशय यह है कि नामके अर्थका मनन। ईश्वरके नाम सार्थ अर्थात् अर्थवान् होते हैं, अतः उनके अर्थका मनन करके उस अर्थको मनमें ढालना आवश्यक है। जैसा 'अग्नि ' ईश्वरका नाम है, इसका अर्थ (अगति) ' गतिमान्, प्रकाश दाता और (अग्र-नी) अन्ततक पहुंचानेवाला ' है। प्रगति करना, मार्ग दर्शाना और हाथमें लिये कामको अन्ततक समाप्त करना ये इसके भाव मननके विषय हैं। मनन द्वारा ये अपने जीवनमें योग्य रीतिसे ढाले जाने चाहिये। ईश्वरके मंगल नामोंका यही मनन है।

'**अमृतानां कतमस्य नाम मनामहे** ?' अमरदेवोंमेंसे किस देवके नामका हम मनन करें ? देव तो अनेक हैं। उनमें किस एक देवका नाम मननके लिये लिया जाय ? यह सचमुच साधकके लिये महत्वका विषय है। इसका उत्तर यह है—

'**अमृतानां प्रथमस्य देवस्य नाम मनामहे** ।' अनेक अमरदेवोंमें जो सबसे मुख्य और प्रथम उपास्य है, जो श्रेष्ठ देव है उसके नामका मनन करना चाहिये, और उस नाम (चारु नाम) की सुन्दरताका पता विश्वव्यवहारमें लग जाय, ऐसी अवस्था आनेतक यह मनन होना चाहिये। नामकी चारुताका पता लगनेका नाम उसमें 'रस' मिलना है। अधिक मननसेही सिद्ध होनेवाली यह बात है। जबतक नामके मननसे 'रस' नहीं आयेगा, तब तक समझना चाहिये कि अपना नाममनन ठीक नहीं हुआ !

यहां '**प्रथमस्य अग्नेः देवस्य चारु नाम मनामहे** ।' 'सब देवोंमें अग्निदेव प्रथम है अतः उसके सुंदरनामका मनन करेंगे' ऐसा कहा है। और उपासनाके लिये अग्निको ही सबसे प्रथम लिया है। यह अग्नि 'आग' है जो हमारा भोजन पकाता है ऐसा प्रथम मालूम होता है, पर जब बिजली गिरनेसे आग लगती है और सब जलने लगता है, तब प्रतीत होता है कि यह आग और विद्युत् एकही है और इसके पश्चात् काचमणिमेंसे आये सूर्य किरण आग उत्पन्न करते हैं यह देखते ही, पता लगता है कि सूर्य-विद्युत्-आग ये तीन एकही अग्निके रूप हैं। इसतरह यह अग्नि पृथ्वीपर, अन्तरिक्षमें विद्युत् रूपसे और द्युलोकमें सूर्य रूपसे है, इतनाही नहीं परंतु विश्वरूपसे संपूर्ण ब्रह्माण्डमें है यह बात मननसे स्पष्ट होती है और इसकी सर्वव्यापकता स्पष्ट होती है। हरएक वस्तुमें यह अग्निदेव है और उस वस्तुको रूप देता है अतः वस्तु दीखती है। विश्वका रूप दीख रहा है वह अग्निका रूप है ऐसा इस समय पता लगता है। इस समय उपासकके सामने 'विश्वरूप अग्नि' आता है और इसके संकुचित भाव दूर होते हैं।

यहाँ पहिला (प्रथमः अग्निः) है जिसका नाम जप यहां कहा है। मनन करते करते 'आग' के रूपसे विश्वव्यापक अग्नितक उपासक पहुंचता है और विश्वके सभी रूप एकही मूलतत्त्व के हैं यह बात स्पष्ट हो जाती है। इसतरह विश्वरूप देवका साक्षात्कार उपासकको होता है।

नामके मननका फल क्या है ? यह प्रश्न यहां उत्पन्न होता है। इसके उत्तरके लिये '**सः नः मह्यै अदितये दात्** ।' वह उपास्य देव हम सब उपासकोंको बडी अदितिके पास पहुंचाता है। यह नामके मननका फल है। अदिति कौन है ? 'दिति' और 'अ-दिति' ऐसे दो भाव इस विश्वमें है। 'दिति' का अर्थ टुकडा, भाग, खण्ड है और 'अ-दिति' का अर्थ 'अटूट, अभिन्न और अखण्ड सत्ता' है। अखण्ड सत्ता और खण्डित सत्ता ये दो भाव यहां है। अखण्डभाव विस्तारका द्योतक और खण्डभाव संकोचका द्योतक है। जैसा ऊपर 'अग्नि' का विचार करते हुए हमने देखा कि अग्निको केवल आग, केवल विद्युत् अथवा केवल सूर्य मानना खण्डित भावका दर्शन करना है। यह 'दिति'का क्षेत्र है। तथा सब विश्वमें एकही अग्नितत्त्व है और वही एक तत्त्व विश्वरूप बना है ऐसा अटूट, अखण्ड और अनन्तभावका दर्शन करना इसका नाम 'अदिति' का क्षेत्र है।

अग्निको केवल आगही समझना खण्डका अनुभव करना है, इसमें आंशिक सत्य है, संपूर्ण सत्य नहीं है, इसलिये यह अज्ञान है, और अग्निको विश्वव्यापक तत्त्वके रूपमें अनुभव करनेका नाम संपूर्ण अखण्ड, अटूट और अनंत सत्यका दर्शन करना है। यही ज्ञान कहलाता है। पूर्वोक्त नामका मनन अदितितक अर्थात् सर्वव्यापक तत्त्वतक पहुंचा देता है। खण्डभावसे बंधन और अखण्डभावसे बंधनसे छुटकारा अर्थात्

मुक्ति होना संभव है। इसीलिये 'अमर देवताके नामका मनन' करना है। यही मनुष्यका साध्य है।

'पुनः दात्' अदितिके लिये 'पुनः देता है' अर्थात् अदिति नामक जो भूमा अवस्था है उसको प्राप्त होनेके लिये बारंबार जन्म लेना आवश्यक है। एकही जन्मसे निःसंदेह साध्य होनेवाली यह अवस्था नहीं है। कदाचित् एक जन्ममें साध्य होगी, अथवा अनेक जन्मोंसे यह साध्य हो सकेगी। यह अन्तिम सिद्धि है इसमें संदेह नहीं है।

'पिता और माताका दर्शन होगा' ऐसा दोनों मंत्रोंमें कहा है। अदितिकी भूमावस्थाको प्राप्त होनेतक जितने जन्म लिये जाते हैं उनमेंसे प्रत्येक जन्ममें पिता और माताका दर्शन होता ही है। यह आवश्यकही है, और यह उन्नतिका साधनही है इसलिये यह आनंदका विषय है।

अदितिके प्राप्तिके लिये जितना मार्ग चलना है, उस मार्गमें बीचबीचमें मुकाम करनेके लिये पिता और माताका दर्शन करना आवश्यक ही है। यहां 'पिता-माता' ऐसा क्रम कहा है और यह योग्य ही है। जीव प्रथम अन्नमें रहता है, वहांसे पिताके देहमें वीर्य रूपमें जन्म लेता है, पश्चात् गर्भाधानसे माताके उदरमें प्रविष्ट होता है, वहांसे जन्म लेता है। इस तरह प्रथम पितामें और पश्चात् मातामें यह निवास करता है। इसलिये 'पिता-माता' यह क्रम शास्त्रशुद्ध है।

यहां बन्धनसे मुक्ति पानेका साधन 'ईश्वरके नामका मनन' कहा है, यह मनन उसमें रस आनेतक, उसका सौंदर्य विश्वरूपमें दीखनेतक करना चाहिये, बीचमें अनेकवार और पुनःपुनः जन्म लेना पडे तो वह उन्नतिके लिये आवश्यक ही है, इसलिये जन्मको घृणाकी दृष्टीसे देखना नहीं चाहिये, तथा जन्म देनेवाली स्त्रीको भी घृणासे देखना नहीं चाहिये। माताके विषय में सदा आदर रखना चाहिये इतना उपदेश पहिले दो मंत्रोंसे प्रतीत हुआ।

बहुवचनी पद

यह सूक्त एक मानवके लिये है अथवा सब मानवजातीके लिये है यह बडा ही विचार करनेयोग्य प्रश्न है। एक शुनःशेप बंधनमें पडा था, उसने अपनी मुक्तिके लिये प्रार्थना की ऐसी कथा है। यदि यह कथा सत्य मानी जाय तो शुनःशेप अपने लिये 'अहं' (मैं) ऐसा पद प्रयुक्त करता। परंतु यहां बहुवचनके प्रयोग हैं देखिये-

१ **वयं मनामहे** (मं. १, २)-हम मनन करेंगे,

२ **त्वा भागं अभि ईमहे** (३)-तुमसे हम धन मांगते हैं,

३ **वयं उदशेम** (५)- हम उन्नत होंगे,

४ **एनः अस्मत् प्रमुमुग्धि** (९)- पाप हमसे दूर करो

५ **नः आयुः मा प्रमोषीः** (११)- हमारी आयु मत् कम करो,

६ **वरुणः अस्मान् मुमोक्तु** (१२)- ईश्वर हमें मुक्त करे,

७ **ते हेळः नमोभिः अव ईमहे** (१४)- तेरे क्रोधको नमस्कारोंसे हम दूर करते हैं,

८ **यज्ञेभिः अव ईमहे** (१४)- यज्ञोंसे तेरे क्रोधको दूर करते हैं,

९ **अत्र अस्मभ्यं एनांसि शिश्रथः** (१४)-यहां हम सबके पापोंको दूर कर

१० **पाशं अस्मत् उत् श्रथाय** (१५)-हमसे पाशको दूर कर (तीनवार)

११ **वयं तव व्रते अनागसः स्याम** (१५)-हम सब तेरे नियममें रहते हुए निष्पाप होंगे।

इस तरह 'हम सब' ऐसा प्रयोग इस सूक्तमें ग्यारह वार आया है। अतः यह सूक्त किसी एक भक्तकी मुक्तिके लिये ही है ऐसा मानना अयोग्य है। तथापि इस सूक्तमें एकवचनके प्रयोग भी हैं, वे अब देखिये

एकवचनी प्रयोग

इस सूक्तमें ऊपर दिये समान बहुवचनी प्रयोग हैं जो बहुसंख्याके वाचक हैं, सब समाजके वाचक हैं। वैसे एकवचनके भी प्रयोग हैं जो एक ही आदमीके वाचक हैं। इसके उदाहरण देखिये-

१ **पितरं च मातरं च दृशेयम्** (मं. १, २)-पिता और माताका दर्शन करूंगा,

२ **रायः मूर्धानं आरभे** (५)-ऐश्वर्यके शिखरपर चढकर बडे कार्योंका प्रारंभ करूंगा,

३ **तत् त्वा यामि** (११)—वह दीर्घायु तुम्हारे पास मांगता हूं,

इतने वचन एक वचनमें है। एक आदमीके, एक व्यक्तिके

ये कर्म हैं। मातापिताको देखनेका मतलब है जन्म धारण करना, दीर्घ आयु प्राप्त करना और ऐश्वर्यके शिखरपर पहुंचकर बडे कार्योंका प्रारंभ करना, ये सब कार्य प्रत्येक व्यक्तिके करनेके हैं। प्रत्येक व्यक्ति स्वतंत्र रीतिसे जन्मती है, प्रत्येक व्यक्ति स्वतंत्र-रूपसे दीर्घ आयु चाहती है और ऐश्वर्यके शिखरपर चढकर बडे बडे पुरुषार्थ करके पराक्रम करना भी व्यक्तिकी बुद्धिसे बननेवाले कार्य है।

इस सूक्तमें केवल तीन ही निर्देश व्यक्तिके हैं, और ग्यारह निर्देश संघके लिये हैं। इससे स्पष्ट हो जाता है कि यह सूक्त एक व्यक्तिके मुक्त होनेके लिये नहीं है, परंतु सामाजिक बंधन निवृत्ति के लिये हैं। सामाजिक जीवनका विचार करनेमें भी कुछ कार्य व्यक्तिके करनेके होते हैं, अर्थात् शिक्षा पाना, शरीर पोषण करना, स्नानादि करना, योगसाधन करना इत्यादि। व्यक्तिके स्वास्थ्यके लिये इनकी आवश्यकता रहती है, अतः ये कर्म करके व्यक्ति सामाजिक कार्य करनेके लिये समर्थ बने। समर्थ बनकर सामाजिक कार्य करके विश्व सेवा करे।

सामाजिक उन्नतिके लिये (१) सब मिलकर ईश्वरके पवित्र नामोंका मनन करें और उससे अपने कर्तव्योंका बोध प्राप्त करें, (२) सामाजिक तथा राष्ट्रीय उन्नतिकी साधना करें, (३) मिलकर यत्न करके भाग्य प्राप्त करें, ऐश्वर्यकी वृद्धि करें, (४) अपने सामाजिक पाप दूर करें, समाजके दोष दूर करें, (५) धर्म नियमोंमें रहें (६) यज्ञ करें। इस तरहके नानाविध कार्य मनुष्य करें। ये कार्य संघद्वारा ही हो सकते हैं क्योंकि सब समाजकी उन्नतिके साथ इनका संबंध है। '**अस्मान् मुमोक्तु**' (मं. १२) हम सबकी बंधनसे मुक्तता करे इस मंत्रसे वैदिक मुक्ति संघमुक्ति है, वैयक्तिक मुक्ति नहीं है, इस बातका पता लगता है। समाजका समाज सुधरना चाहिये, तब ही इस भूमिपर स्वर्गधाम स्थापित हो सकता है। यह ध्येय है जो इस सूक्तके द्वारा ऋषि शुनःशेपने घोषित किया है।

ईश्वरका स्वरूप

यहां अग्नि, वरुण, सविता, आदित्य, अमृतानां प्रथमः, राजा, विद्वान, असुर, प्रचेतः, देव इतने नाम इस सूक्तमें ईश्वरके वाचक आगये हैं। कई लोग इनसे विभिन्न देवोंका बोध होता है, ऐसी कल्पना करते हैं, परंतु हमारे मतसे वह सत्य प्रतीत नहीं होती। क्योंकि प्रथम मंत्रमें हि 'अनेक अमर देवोंमें किस एक मुख्य देवके नामका हम मनन करें?' ऐसा प्रश्न पूछा है और द्वितीय मंत्रमें 'अनेक अमर देवोंमें सबसे मुख्य अग्नि देवके नामका हम मनन करेंगे' ऐसा कहा है। अतः आगे तृतीय मंत्रसे 'सविता' आदि पद उसी एक अग्नि देवके वाचक मानना योग्य हैं। क्योंकि एक देवके नामका मनन करनेकी प्रतिज्ञा द्वितीय मंत्रमें करनेके पश्चात् तृतीय मंत्रसेही दूसरे देवकी भक्ति करनेका कोई कारण सूक्तमें नहीं दीखता है। एकही देवकी भक्ति करनेकी प्रतिज्ञा है, अनेक देवोंकी नहीं। अतः सब नाम उसी एक देवके हैं ऐसा मानना ही युक्तियुक्त और पूर्वापर संबंधके अनुकूल है। वैसाही हमने माना है।

कई विद्वान् पृथक् पृथक् देवोंकी भक्ति करनेकी बात इन मंत्रोंमें देखते हैं, और अग्निको छोडकर वरुणकी उपासना की, वरुणके बाद आदित्यकी, ऐसी कल्पना करते हैं, यह कल्पना प्रथम तो प्रारंभिक दोनों मंत्रोंके विधानसे सर्वथा विरुद्ध है। और 'एक, सत् है जिसको ज्ञानीजन अग्नि, वरुण, इन्द्र आदि कहते हैं' (ऋ. १.१६४।४६) ऐसा जो वेदमें अन्यत्र एक-सत्तावाद कहा है, उस वैदिक सिद्धांतके भी विरुद्ध है। इसलिये इस सूक्तमें जो अग्नि, वरुण, सूर्य, सविता आदि नाम हैं, वे एक मूल मुख्य आत्मतत्त्वके वाचक हैं, इसलिये उसीके अनेक नामोंका मनन इस सूक्तमें किया गया है ऐसा मानना युक्तियुक्त है। इसके गुणधर्म ये हैं—

१ **सदा-अवन**– वह सदा सबकी सुरक्षा करता है,

२ **सविता** (प्रसविता)– वह अपने अन्दरसे सब विश्वका प्रसव करता है,

३ **देवः**– वह प्रकाशमान है, सब सुखोंका दाता है,

४ **सः (यः) भगः दधे**– वह सब ऐश्वर्योंका आधार है,

५ **वार्याणां ईशः**– सब श्रेष्ठ धनोंका स्वामी है, (३)

६ **भगभक्तः**– धनका बंटवारा योग्य प्रमाणसे करता है, (५)

७ **वरुणः**– वरिष्ठ देव, श्रेष्ठ प्रभु है,

८ **पूत-दक्षः**– पवित्र कार्योंमेंही अपने बलका उपयोग वह करता है,

९ **राजा**– वह सब विश्वका राजा है,

१० ईश्वरके बल, पराक्रम और उत्साहको कोई न जान सकता, और न कोई लांघ सकता है। (६)

११ ईश्वरने एक वृक्ष बिना आधार आकाशमें टांग दिया है, जिसकी शाखाएं नीचे फैली हैं, इनकी जडे ऊपर हैं, और सब जगह किरण फैलाये हैं। (७) [गीतामें 'ऊर्ध्वमूलं अधः-शाखं' ऐसा जिसका वर्णन (अ. १५ में) किया है वैसाही यह वृक्ष दीखता है।]

१२ ईश्वरने सूर्यके लिये विस्तृत मार्ग बनाया है, अन्तरिक्षमें बडा स्थान उत्पन्न किया है और यही सबके अन्तःकरणोंके कष्टोंको दूर करता है। (८)

१३ ईश्वरने सहस्रों रोगनिवारक औषधियां निर्माण कीं हैं। इसकी शुभ मति सबपर समान है। यही सबकी आपत्तिको दूर हटा सकता है और पापसे बचा सकता है। (९)

१४ ईश्वरने ये नक्षत्र आकाशमें बडे ऊंचे स्थानपर रखे हैं, ये रात्रीमें दीखते हैं, पर दिनमें दीखते नहीं। इसके नियमोंको कोई लांघ नहीं सकता। इसीकी योजनासे चमकता हुआ चन्द्रमा रात्रीमें प्रकाशित होता है। (१०)

१५ ईश्वरके पास हम दीर्घ आयु मांगते हैं। (११)

१६ **सः अस्मान् मुमोक्तु**– सब यही कहते हैं कि वही प्रभु हम सबको बंधनसे मुक्त करनेवाला है। (१२)

१७ **विद्वान्**– वह ज्ञाता है,

१८ **अदब्धः**– न दबनेवाला, जिसपर किसी दूसरेका अधिकार नहीं चलता,

१९ **वरुणः पाशान् वि मुमोक्तु**– प्रभु पाशोंसे हमें मुक्त करें,

२० **एनं अव सृज्यात्**– इस (जीव) को खुला करे, बंधनसे छुडावे, (१३)

२१ **असुरः** (असु-रः)–जीवनशक्ति देनेवाला, जिसकी जीवनशक्तिसे सब सजीव हुए हैं; जीवनका आधार,

२२ **प्रचेतः**– विशेष ज्ञानी, (१४)

२३ **आदित्यः**– (अ-दिति) अखण्ड, अनन्त, अटूट, स्वतंत्र, (आदानान्) जो सबको पकड रखता है, सबका नियामक,

२४ **तव व्रते अनागसः स्याम**– प्रभुके नियमोंके अनुसार वर्ताव करनेसे भक्त निष्पाप होता है। (१५)

इस सूक्तमें यह इस तरह ईश्वरका वर्णन किया है। यही प्रभुका नाम है। नामका अर्थ केवल नामही नहीं है, प्रत्युत नामका अर्थ वर्णन, गुणवर्णन, सामर्थ्यका वर्णन है। इसीका मनन करना चाहिये। यह मनन मनुष्यकी उन्नति करनेके लिये उत्तम मार्ग दर्शन कर सकता है।

एकके अनेक नाम

इस सूक्तमें एक प्रभुके अनेक नाम हैं यह बात सूचित की है देखिये—

१ प्रथम और द्वितीय मंत्रमें अनेक 'देवोंमें किसी एक देवके नामका मनन' करनेकी इच्छा प्रकट हुई है।

२ आगेके मंत्रोंमें मननीय देवका वर्णन अनेक नामोंसे किया है। इससे सिद्ध होता है कि वे नाम एकही देवके हैं जिसकी उपासना करनी है।

३ तृतीय मंत्रमें ' **सविता** और **ईश** ' ये नाम उसी एक प्रभुके आये हैं, ये दो देवोंके नहीं हैं, पर एक ही देवके ये दो नाम हैं।

४ सप्तम मंत्रमें ' **पूतदक्ष, राजा, वरुण** ' ये तीन नाम प्रभुके लिये ही हैं। राजा और वरुण ये नाम आगेके मंत्रोंमें भी आये हैं।

५ तेरहवें मंत्रमें **आदित्य, विद्वान्, अदब्ध, राजा, वरुण**, ये उसीके नाम हैं।

६ चौदहवें मंत्रमें ' **असुर** ' नाम ईश्वरके लिये ही है। इस तरह यह सूक्त अनेक नामोंसे एक ही देवताका वर्णन होता है, यह बात स्पष्ट रूपसे बताता है।

तीन पाश

पंद्रहवें मंत्रमें **उत्तम, मध्यम** और **अवम** ऐसे तीन पाश हैं, उनको ढीला करो ऐसी प्रभुकी प्रार्थना है। हरएक मनुष्य तीन पाशोंसे बंधा है, ये तीन बंधन मानवपर हैं। पितृऋण ऋषिऋण और देवऋण ये तीन ऋण मनुष्यपर हैं। उत्तम संतान उत्पन्न करनेसे पितृऋण दूर होता है, ज्ञान प्राप्त करके ज्ञानका प्रसार करनेसे ऋषिऋण दूर होता है, और यज्ञीय जीवनसे देवऋण दूर होता है।

यहां भी तीन ऋण उतारनेका अर्थ तीन बन्धनोंसे मुक्त होना ही है। तामस, राजस और सात्विक आकांक्षाओंसे तीन बंधन मनुष्यको बांध देते हैं, इनको दूर करके त्रिगुणातीत होना ही तीनों पाशोंसे मुक्त होना है। इस तरह तीन पाशोंका विचार पाठक कर सकते हैं। और उनसे छुटकारा पानेका विचार भी कर सकते हैं।

मनुष्यके लिये बोध

इस सूक्तसे मनुष्यके लिये प्रतिदिनके आचारविचारके लिये बडा बोध मिल सकता है। इसका थोडासा नमूना यहां देते हैं—

१ अमृतानां कस्य देवस्य चारु नाम मनामहे– अमर देवोंमें जो अधिक सुख देनेवाला है, उसके अनंत नामोंमें जो नाम मंगलकारक है उसीका मनन करना योग्य है। अर्थात् जो नाशवान् हैं, अमंगल हैं, हीन हैं उनके नाम या वृत्तका कदापि मनन करना योग्य नहीं है। जो सबसे अधिक (कः) सुखदायी है उसीका नाम मननके लिये लेना योग्य है। नाम अनंत हैं, पर उनमें जो (चारु) सुंदर, रमणीय, मंगल हैं उनका ही आलंबन करना चाहिये। (मं १, २)

२ अदितये पुनः दात्–अखंडित, सर्वतंत्र स्वतंत्र शक्तिकी सिद्धिके लिये पुनः पुनः दान दो, आत्मसमर्पण करते रहो। [जीव अंश है अतः वह एक ' खण्ड ' है, अल्प है। उसको अखण्ड, पूर्ण बनाना है। नरका नारायण होना है, इसलिये खण्डभावका समर्पण ही एकमात्र साधन है।](१-२)

३ सदा-अवन्– सदा निर्बलोंकी सुरक्षा करते रहो (३)

४ देवः–(दावात्) दान करते रहो, (३)

५ अ-द्वेषः– द्वेष न करो,

६ पुरा निदः– निन्दा न करो, (४)

७ भगभक्त– अपनी संपत्तिको सत्पात्रमें बांटो,

८ अबसा उदघोम– अपने बलसे उन्नतिको प्राप्त करो,

९ रायः मूर्धानं आरभे– ऐश्वर्यके शिखरपर चढो और वहां अनेक शुभ कर्मोंको आरंभ करो, (५)

१० क्षत्रं सहः मन्युं न आपुः– अपना प्रताप, बल और उत्साह इतना बढाओ कि जिसको कोई लांघ न सके (६)

११ पूतदक्षः– पवित्र कर्मोंमें अपनी शक्तिको लगा दो,(७)

१२ हृदया-विधः अपवक्ता– हृदयको कष्ट देनेवाले भावोंका निषेध करो, (८)

१३ सुमतिः उर्वी गभीरा– तुम्हारी सुमति विशाल और गंभीर रहे (९)

१४ निर्ऋतिं दूरे बाधस्व– अपनी दुरवस्थाको दूर हटा दो, ऐसा प्रबंध करो कि कभी तुम्हारी दुर्गति न हो सके(९)

१५ आयुः मा प्रमोषीः– जिससे आयु क्षीण होगी ऐसा कोई कार्य न करो, (११)

१६ हृदः केतः वि चष्टे– अपने अन्तरात्माका क्या कहना है वह देखो, अपना हृदयका ज्ञान क्या कहता है वह सुनो, (१२)

१७ विद्वान् अदब्धः– ज्ञानी बनो, किसी दुष्टके दबावके नीचे न दब जाओ, (१३)

१८ पाशान् मुमोक्तु– अपने पाशों को तोड दो, बंधनोंसे मुक्त हो जाओ (१३)

इस तरह इस सूक्तमें मानवधर्मका बोध करनेवाले कई पद और वाक्य हैं। 'देवता जैसा करता है वैसा मानव करे।' इस सूत्रको ध्यानमें धारण करके सूक्तका मनन करनेसे सूक्तके मंत्रोंसे तथा मंत्रके अवयवोंसे मानव धर्मका बहुत उपदेश मिल सकता है। अब आगेका सूक्त देखो—

(२) विश्वका सम्राट्

(ऋ. १-२५) आजीगर्तिः शुनःशेपः स कृत्रिमो वैश्वामित्रो देवरातः। वरुणः। गायत्री।

यच्चिद्धि ते विशो यथा प्र देव वरुण व्रतम् । मिनीमसि द्यविद्यवि १
मा नो वधाय हत्नवे जिहीळानस्य रीरधः । मा हृणानस्य मन्यवे २
वि मृळीकाय ते मनो रथीरश्वं न संदितम् । गीर्भिर्वरुण सीमहि ३
परा हि मे विमन्यवः पतन्ति वस्य इष्टये । वयो न वसतीरुप ४
कदा क्षत्रश्रियं नरमा वरुणं करामहे । मृळीकायोरुचक्षसम् ५
तदित् समानमाशाते वेनन्ता न प्र युच्छतः । धृतव्रताय दाशुषे ६
वेदा यो वीनां पदमन्तरिक्षेण पतताम् । वेद नावः समुद्रियः ७

वेद मासो धृतव्रतो द्वादश प्रजावतः । वेदा य उपजायते ८
वेद वातस्य वर्तनिमुरोर्ऋष्वस्य बृहतः । वेदा ये अध्यासते ९
नि षसाद धृतव्रतो वरुणः पस्त्याश्स्वा । साम्राज्याय सुक्रतुः १०
अतो विश्वान्यद्भुता चिकित्वाँ अभि पश्यति । कृतानि या च कर्त्वा ११
स नो विश्वाहा सुक्रतुरादित्यः सुपथा करत् । प्र ण आयूंषि तारिषत् १२
बिभ्रद् द्रापिं हिरण्ययं वरुणो वस्त निर्णिजम् । परि स्पशो नि षेदिरे १३
न यं दिप्सन्ति दिप्सवो न द्रुह्वाणो जनानाम् । न देवमभिमातयः १४
उत यो मानुषेष्वा यशश्चक्रे असाम्या । अस्माकमुदरेष्वा १५
परा मे यन्ति धीतयो गावो न गव्यूतीरनु । इच्छन्तीरुरुचक्षसम् १६
सं नु वोचावहै पुनर्यतो मे मध्वाभृतम् । होतेव क्षदसे प्रियम् १७
दर्शं नु विश्वदर्शतं दर्शं रथमधि क्षमि । एता जुषत मे गिरः १८
इमं मे वरुण श्रुधी हवमद्या च मृळय । त्वामवस्युरा चके १९
त्वं विश्वस्य मेधिर दिवश्च ग्मश्च राजसि । स यामनि प्रति श्रुधि २०
उदुत्तमं मुमुग्धि नो वि पाशं मध्यमं चृत । अवाधमानि जीवसे २१

अन्वयः— हे वरुण देव ! यथा विशः, ते यत् चित् हि व्रतं, द्यवि द्यवि प्र मिनीमसि ॥ १ ॥

जिहीळानस्य हत्नवे वधाय नः मा रीरिधः । हृणानस्य मन्यवे मा (रीरिधः) ॥ २ ॥

हे वरुण ! रथीः संदितं अश्वं न मृळीकाय ते मनः गीर्भिः वि सीमहि । ॥ ३ ॥

वयः वसतीः उप (पतन्ति)न मे विमन्यवः वस्यइष्टये हि परा पतन्ति, ॥ ४ ॥

क्षत्रश्रियं नरं उरुचक्षसं वरुणं कदा मृळीकाय आ करामहे ? ॥ ५ ॥

धृतव्रताय दाशुषे वेनन्ता समानं तत् इत् आशाते, न प्र युच्छतः ॥ ६ ॥

अन्तरिक्षेण पततां वीनां पदं यः वेद । समुद्रियः नावः वेद ॥ ७ ॥

धृतव्रतः प्रजावतः द्वादशमासः वेद, यः उपजायते (तं) वेद ॥ ८ ॥

अर्थ— हे वरुण देव ! जैसे अन्य मनुष्य (प्रमाद करते हैं, वैसे) तेरे जो भी नियम (हैं, उनके करनेमें) प्रति दिन (हम भी) प्रमाद करते ही हैं ॥ १ ॥

(तेरा) निरादर करनेवालेका वध करनेके लिए (ऊपर उठाये तेरे) शस्त्रके सामने हमको मत खडा रख । (तथा) क्रुद्ध हुए (तेरे) क्रोधके सामने (हमें) मत (खडा रख) ॥ २ ॥

हे वरुण ! जिस प्रकार रथी वीर अपने थके हुए घोडोंको (शान्त करता है, उस तरह) सुख देनेवाले तेरे मनको स्तोत्रोंद्वारा हम विशेष प्रसन्न करते हैं ॥ ३ ॥

जिस तरह पक्षी अपने घोंसलोंकी ओर (दौडते हैं, उस तरह) मेरी विशेष उत्साहित बुद्धियाँ धनकी प्राप्तिके लिये दूर दूर दौड रही हैं ॥ ४ ॥

पराक्रमके कारण शोभायमान नेता विशेष द्रष्टा वरुणको हम यहां कब सुखप्राप्तिके लिये बुलावेंगे ? ॥ ५ ॥

व्रत धारण करनेवाले दाताके लिये (सुखकी) इच्छा करनेवाले (ये मित्र और वरुण) समान भावसे वही (हविष्यान्न) चाहते हैं, (वे कभी उसका) त्याग नहीं करते ॥ ६ ॥

अन्तरिक्षमें उडनेवाले पक्षियोंका मार्ग वह जानते हैं । (तथा जो) समुद्रमें संचार करनेवाली नौकाओंका मार्ग भी जानते हैं ॥ ७ ॥

नियमानुसार चलनेवाला (वरुण देव) प्रजाकी वृद्धि करनेवाले बारह महिनोंको जानते हैं, और जो (तेरहवाँ महिना बीचमें) उत्पन्न होता है (उसको भी) जानते हैं ॥ ८ ॥

उरोः ऋष्वस्य बृहतः वातस्य वर्तनिं वेद। ये अध्यासते (तान्) वेद ॥ ९ ॥

जिसका महत्त्व और बड़े वायुके मार्गको (भी जो) जानते है तथा जो अधिष्ठाता होते हैं (उनको भी) जानते हैं ॥ ९ ॥

धृतव्रतः सुक्रतुः वरुणः पस्त्यासु साम्राज्याय आ नि षसाद ॥ १० ॥

नियमके अनुसार चलनेवाले, उत्तम कर्म करनेवाले वरुण देव प्रजाओंमें साम्राज्यके लिये आकर बैठते हैं ॥ १० ॥

अतः विश्वानि अद्भुता चिकित्वान्, या कृतानि, (या) च कर्त्वा, अभि पश्यति ॥ ११ ॥

इस लिये सब अद्भुत कर्मोंको (करनेकी विधि) जाननेवाले (यह वरुण देव), जो किया है, (और जो) करनेका है, (उस सबको) पूर्णतासे देखते हैं ॥ ११ ॥

सुक्रतुः सः आदित्यः विश्वाहा नः सुपथा करत्। नः आयूंषि प्र तारिषत् ॥ १२ ॥

उत्तम कर्म करनेवाले वे अदिति पुत्र (वरुण देव) सर्वदा हमें सुपथसे चलनेवाले करें। और हमारी आयु बढावें ॥ १२ ॥

हिरण्ययं द्रापिं बिभ्रत् वरुणः निर्णिजं वस्त। स्पशः परि नि षेदिरे ॥ १३ ॥

सुवर्णमय चोगा धारण करनेवाले वरुण देव (उसपर और) तेजस्वी वस्त्र धारण करता है। उसके दूत (किरण) चारों ओर ठहरे हैं ॥ १३ ॥

दिप्सवः यं न दिप्सन्ति। जनानां द्रुह्वाणः (यं) न (द्रुह्यन्ति)। अभिमातयः देवं न (दिप्सन्ति) ॥ १४ ॥

घातक दुष्ट लोग जिसकी दुष्टता नहीं करते। लोगोंका द्रोह करनेवाले जिसका नहीं द्रोह करते। शत्रु उस देवको नहीं (पीडा देते) ॥ १४ ॥

उत यः मानुषेषु यशः आ चक्रे। असामि आ (चक्रे) अस्माकं उदरेषु आ (चक्रे) ॥ १५ ॥

और जिन्होंने मनुष्योंमें यश फैलाया है। संपूर्णतया (सब-कुछ) किया है। हमारे पेटोंमें भी (सुन्दर रचना उसीने) की है ॥ १५ ॥

उरुचक्षसं इच्छन्तीः मे धीतयः, गावः न गव्यूतीः अनु, परा यन्ति ॥ १६ ॥

उस सर्वसाक्षी (प्रभुकी) इच्छा करनेवाली मेरी बुद्धियाँ, गौवें गोचर भूमिके पास जानेके समान, (उन्हीं के पास) दूर-तक जाती हैं ॥ १६ ॥

यतः मे मधु आभृतं, होता इव प्रियं क्षदसे, पुनः नु सं वोचावहै ॥ १७ ॥

जो मैंने यह मधु भरकर लाया है, हवनकर्ताके समान इस प्रिय (मधुर रसका तुम) भक्षण करो। फिर हम दोनों मिल-कर बातें करेंगे ॥ १७ ॥

विश्वदर्शतं दर्शं नु। क्षमि रथं अधि दर्शम्। एताः मे गिरः जुषत ॥ १८ ॥

विश्वरूपमें दर्शनीय (देवको) निःसंदेह मैंने देख लिया है। भूमिपर उसके रथको मैंने देखा है। ये मेरी स्तुतियां उन्होंने स्वीकार की हैं ॥ १८ ॥

हे वरुण! इमं मे हवं श्रुधि। अद्य मृळय च। अवस्युः त्वां आ चके ॥ १९ ॥

हे वरुण! मेरी यह प्रार्थना सुनो। आज मुझे सुखी करो। सुरक्षाकी इच्छा करनेवाला मैं तुम्हारी स्तुति करता हूँ ॥ १९ ॥

हे मेधिर! त्वं दिवः च ग्मः च विश्वस्य राजसि। सः (त्वं) यामनि प्रति श्रुधि ॥ २० ॥

हे बुद्धिसे प्रकाशित होनेवाले देव! तुम द्युलोक, भूलोक और सब विश्वपर राज्य करता है। वह (तुम हमारी) प्रार्थना-के पश्चात् उसका उत्तर दो ॥ २० ॥

नः उत्तमं पाशं उत् मुमुग्धि, मध्यमं वि चृत, जीवसे अधमानि अव (चृत) ॥ २१ ॥

हमारे उत्तम पाशको खुला करो, हमारे मध्यम पाशको ढीला करो और दीर्घ जीवनके लिये मेरे अधम पाशोंको भी खोल दो ॥ २१ ॥

प्रभो! मेरे प्रमादोंकी क्षमा करो

इस सूक्तके पहिले दो मंत्रोंमें प्रभुसे प्रार्थना की है, कि 'वह श्रेष्ठ प्रभु हमारे प्रमादोंकी हमें क्षमा करें।' क्योंकि हम मानव प्रमादशील ही हैं, कितनी भी सावधानी रखी तो भी प्रमाद हमसे होतेही रहेंगे। ऐसी अवस्थामें यदि प्रत्येक प्रमादके लिये कठोर दण्ड देना ही प्रभुको मन्जूर हुआ, तो फिर वध आदि दण्डसे छुटकारा पाना मनुष्योंके लिये सर्वथा असंभवही है। यदि प्रभुही क्षमाशील न होते हुए कठोर दण्ड देनेवाला क्रोधी हुआ, तो मानव किसकी शरण जायगें? इसलिये इस सूक्तके प्रारंभिक दो मंत्रोंमें प्रभुकी ऐसी प्रार्थना की है कि वह हमपर दया करे, कृपा करे, और हमारे अपराधोंकी हमें अपनी अगाध कृपासे क्षमा करें। उनकी सहस्रों आंखोंके सामने हम कहां छिप जाये? इसलिये हम प्रभुकी दयाकी हि शरण लेते हैं।

इन दो मन्त्रोंमें जो विनम्रभाव है वह प्रभुभक्तिके लिये अत्यंत आवश्यक है। अतः इस विनम्रभावसे उपासक भक्त प्रभुकी प्रतिदिन ऐसी प्रार्थना करें कि, 'हे प्रभो! जैसे सब अन्य मानव सदा प्रमाद करते रहते हैं, वैसे हमारे हाथसे भी प्रतिदिन अनेक प्रमाद होते रहते है, इसलिये हमारे प्रत्येक प्रमादके लिये तुम क्रोधित होकर हमें दण्ड न करो। दयाकी दृष्टि हमारे ऊपर रखो।' (१-)२

तेरी दयाका आश्रय

आगे तीसरे मन्त्रमें कहा है कि 'हे प्रभो! जैसे थके घोडे-पर उसका मालिक दया करके उसको विश्राम देता है, उस प्रकार मैं इस संसारमें त्रस्त और दुःखी हुआ हूं, इसलिये तुम्हारी प्रार्थना करता हूं कि स्वामीकी तरह तुम मुझपर दया करो और मुझे अपनी अतुल दयासे सुखी करो। मेरे योग्य कर्म न भी हों, तथापि तुम अपनी दया प्रकट करके मुझे सुखी करो। मैं तुम्हारी प्रार्थना ही कर सकता हूं।' प्रमादशील होनेके कारण मुझसे सुयोग्य कर्म होंगे ही, ऐसा नियम नहीं है, तथापि तुम्हारी दयाका ही मैं पात्र बना रहूंगा, यही मेरी प्रार्थना है। (मं.३)

चौथे मंत्रका आशय यह है कि-' जिस तरह पक्षी दिनभर इधर उधर घूमघाम कर शामको विश्रामके लिये अपने अपने घोंसले की ओर ही जाते हैं, और वहां विश्राम पाते हैं, उसी तरह मेरी बुद्धियाँ और मेरी विचारधाराएं इस विश्वमें इधर उधर घूमती रहती हैं, परंतु चिर शान्तिकी और शाश्वत सुखकी इच्छासे तुम्हारे ही आश्रयमें आती हैं और वहीं शान्ति सुख और आनन्द पाती हैं।' (मं. ४) इस मंत्रका कथन कितना हृदयस्पर्शी है इसका अनुभव पाठक करें।

पांचवे मंत्रमें हृदयकी उत्कट इच्छा यह प्रकट हुई है कि 'जो प्रभु सबकी सुरक्षितता करनेका सामर्थ्य रखता है, जो विश्वका नेता और संचालक है, जो चारों ओर विशाल दृष्टीसे सबको याथातथ्य रीतिसे देखता है, जो सबसे श्रेष्ठ है, उस सुख-दायी प्रभुकी हम सब मिलकर कब उपासना करेंगे? ' कब वह हमारे सामने साक्षात् दर्शन देगा? हम आतुर हुए हैं उसकी भक्ति करनेके लिये, अतः चाहते हैं कि उसके साक्षात्कारका समय शीघ्र प्राप्त हो और हम उस प्रभुकी आनन्दकी प्राप्ति होने-तक यथेच्छ उपासना करें। (मं. ५)

'ये मित्र और वरुण ऐसे हैं कि जो व्रती और दाता पुरुषकी उन्नति करना चाहते हैं, वे कभी अपने भक्तका त्याग करते नहीं।' (मं. ६) यह दृढविश्वास इस मंत्रमें व्यक्त हुआ है। भक्तके प्रयत्न व्यर्थ कभी नहीं जांयगे यह विश्वास यहां व्यक्त हुआ है। हरएक उपासकके अन्तःकरणमें ऐसा विश्वास अवश्य होना चाहिये।

प्रभु सर्वज्ञ है

आगेके तीन मंत्रोंमें प्रभुकी सर्वज्ञताका उत्तम वर्णन है-' वह प्रभु आकाशमें उडनेवाले पक्षीयोंकी गति जानता है, कौनसा पक्षी कहांसे उडा है और कहां जायगा यह सब उसको पता है, समु-द्रमें इतस्ततः घूमनेवाली नौकाएँ किस गतिसे घूम रही हैं, उन-मेंसे कौनसी नौका अपने स्थानको ठीक तरह पहुंचेगी और कौनसी नहीं यह सब उस प्रभुको पता है। वर्षके बारह महिनों में और (तीसरे वर्ष आनेवाले) तेरहवें पुरुषोत्तम मासमें क्या उत्पन्न होता है और उससे प्रजाकी उन्नति कैसी होती है यह सब उस प्रभुको पता है। चारों ओर संचार करनेवाले महान सर्व प्राण वायुकी गति कैसी होती है यह भी उसको पता है और इन सबपर जिनकी निग्रानी है उन सब अधिष्ठाता देवता ओंका भी यथायोग्य ज्ञान उस प्रभुको है।' (७-९) इस तरह वह प्रभु सर्वज्ञ है।

प्रभुका विश्वव्यापी साम्राज्य

इसी तरह 'वह प्रभु अपने नियमोंके अनुसार सब कार्य यथायोग्य रीतिसे करता हैं, जो करता है वह उत्तम रीतिसे करता है, ऐसा वह सर्वश्रेष्ठ प्रभु सब प्रजाओंमें बैठता है और

अपना साम्राज्य चलाता है । वहां रहकर विश्वमें क्या हो रहा है, क्या किया गया है और क्या करना चाहिये इसका यथायोग्य निरीक्षण करता है । वही उत्तम कार्य करनेवाला प्रभु सबका बंधनसे छुटकारा करा देनेके लिये सब मानवोंको उत्तम मार्गसे चलावे और सबसे उत्तम कर्म होनेके लिये उनको दीर्घ आयुभी देवे ।' (मं. १०-१२) यहां प्रभुके अतुल सामर्थ्यका भी वर्णन है, और उनकी सहायताकी भी प्रार्थना है।

सुवर्णके वस्त्रका आच्छादन

'उस प्रभुके ऊपर सुवर्णके वस्त्रका आच्छादन है, मानो वह प्रभु जरतारीके कपडे पहनकर और ऊपर वैसाही दुपट्टा लेकर खडा है । इसके दूत चारों ओर संपूर्ण विश्वमें उसीका कार्य करनेके लिये घूम रहे हैं। वे हम सबके चालचलनको देख रहे हैं। कोई दुष्ट शत्रु या द्रोही इस प्रभुको किसीतरह कष्ट नहीं दे सकता इतना इसका सामर्थ्य है ।' (मं. १३-१४)

'उस प्रभुनेही मानवोंमेंसे कईयोंको यशस्वी किया है । वह जो करता है वह कभी अधूरा नहीं करता, जो करता है वह यथायोग्य, यथातथ्य परिपूर्ण करता है अतः उसमें कभी त्रुटी नहीं होती। मनुष्यके पेटमेंही देखिये उसने कैसी उत्तम रचना की है कि जिससे खाये अन्नसे अन्दरही अन्दरसे शरीरका पोषण होता रहता है। ऐसाही सब विश्वभरमें हो रहा है।' (१५)

जैसी गौवें घासकी भूमिके पास दौडती हुई जाती है, वैसी ही मेरी बुद्धियाँ इसी प्रभुके पास दौड रहीं हैं। इस प्रभुको अर्पण करनेके लिये जो भी मधुरतायुक्त रस मुझे मिला है वह सब मैंने उसको अर्पण करनेके लिये इकट्ठा करके रखा है । उसका वह स्वीकार करे और पश्चात् उस प्रभुसे मेरा दिल खोलकर वार्तालाप होता रहे ।' (मं. १६-१७)

ईश्वरका साक्षात्कार

आहा कितनी आनंदकी बात है कि— 'मैंने उस विश्वरूपमें दिखाई देनेवाले प्रभुका साक्षात् दर्शन किया है। जैसा पृथ्वीपर खडा रहा रथ दीखता है, वैसाही वह प्रभु मेरे सन्मुख खडा है । वह अब मेरी प्रार्थना सुने । हे प्रभो ! मेरी प्रार्थना सुनो ! आजही मुझे सुखी करो । अपनी सुरक्षा होनेके लिये मैं तुम्हारी प्रार्थना करता हूं। अतः हे प्रभु मुझे आनन्दमय बनाओ । हे बुद्धिप्रदाता प्रभो ! तुम्हारा साम्राज्य आकाशसे पृथ्वीतक सर्वत्र अखण्ड है । वह हमारी प्रार्थनाओंका श्रवण करके उनकी पूर्णता करे और हमें पूर्ण आनन्दके भागी बनावे।' (मं. १८-२०)

बंधका नाश

'हे प्रभो ! ऊपरके उत्तम मध्यम और कनिष्ठ ऐसे तीनों पाश ढिले करो और मुझे मुक्त करो । ' (मं. २१)

यह सूक्त अत्यंत हृदयस्पर्शी है और बहुत ही भक्तिरससे भरपूर भरा है । पाठक इसका वारंवार पाठ करें, और मंत्रोंका जो आशय ऊपर दिया है उसका मनन करें । और प्रभु भक्तिसे अपने मनको ओत प्रोत भर दें ।

आदर्श पुरुष

इस सूक्तने वरुणको आदर्श पुरुष बताया है, यह आदर्श दर्शानेवाले पद ये हैं-

१ **मृळीकः**—जनोंको सुख देनेहारा, (मं. ३)

२ **क्षत्रश्रीः**—पराक्रमसे शोभनेवाला, शत्रुको परास्त करनेकी शक्ति जिसमें अत्यधिक है,

३ **नरः**—नेता, समाजको चलानेवाला,

४ **उरु-चक्षाः**— विस्तृत दृष्टीसे देखनेवाला, विशाल दृष्टीवाला, सर्व द्रष्टा, (मं. ५)

५ **धृत-व्रतः**—व्रतोंको धारण करनेवाला, नियमोंका पालन करनेवाला, (मं. ८,१०)

६ **सुक्रतुः**—उत्तम कर्म करनेवाला, कर्मोको उत्तम रीतिसे करनेवाला,

७ **पस्त्यासु नि षसाद**—अपनी प्रजाके साथ रहनेवाला (मं. १०)

८ **कृतानि कर्त्वा अभिपश्यति**— क्या किया है और क्या करना है, इसको ठीक तरह देखनेवाला (मं. ११)

९ **आदित्यः (अ-दितेः अयं)**— स्वतंत्रताके लियेही जो रहता है, (आ-दाता) सबोंका जो स्वीकार करता और उनका जो हित करता है,

१० **विश्वाहा नः सुपथा करत्**— सदा जनताको शुभ मार्गसे ले जाता है।

११ **आयूंषि प्र तारिषत्**— दीर्घ आयुष्य करता है, (मं. १२)

१२ **दिप्सवः द्रुह्वाणः अभिमातयः यं न दिप्सन्ति** शत्रु घातक और द्रोही जिसको किसी तरह हानि नहीं पहुंचा

सकते, (मं. १४)

१३ मानुषेषु असामि यशः चक्रे-- मनुष्योंमें जो विशेष यश प्राप्त करता है, (मं. १५)

१४ विश्वदर्शतः-- विश्वमें दर्शनीय, विश्वमें शोभावान, विश्वरूपमें देखने योग्य, (मं. १८)

१५ मेधिरः-- उत्तम मंत्रणा देनेवाला, बुद्धिवान्

ये गुण धारण करनेसे मनुष्य उच्च हो सकता है इसमें कोई संदेहही नहीं है। इसलिये शुनःशेपऋषिने यह आदर्शपुरुष जनताके सामने इस सूक्त द्वारा रखा है। पाठक इन गुणोंका मनन करें।

तीन पाश

तीन पाशोंके विषयमें पूर्व सूक्तमें विवेचन किया है वही यहां देखने योग्य है।

बहुवचनके प्रयोग

इस सूक्तमें भी बहुवचनके प्रयोग बहुत हैं, देखिये--

१ प्र मिनीमसि--हम प्रमाद करते हैं, (मं. १)

२ नः वधाय मा रीरिधः--हमारे वधके लिये सिद्धता मत कर, (मं. २)

३ गीर्भिः वि सीमहि--हम स्तुति करते हैं, (मं. ३)

४ कदा आ करामहे--प्रभुको हम कब बुलायेंगे ? (मं.५)

५ नः आयूंषि प्र तारिषत--हमारे आयुष्य बढावें,(मं.१२)

६ नः पाशं उत् मुमुग्धि--हमारा पाश खोल दो (मं.१२)

ये बहुवचनके प्रयोग पूर्व सूक्तके समान ही ' हम सब मानव ' ऐसा भाव बता रहे हैं। यहां एक मानवके बंधे जानेका संबंध ही दीखता नहीं। जिस अन्तिम मन्त्रमें पाश खोलनेकी बात कही है वहां भी ' नः पाशं ' हमारे पाशको खोल दो, अर्थात् हम सबके पाशोंको खोलो ऐसा ही कहा है इसलिये किसी एक मानवके बंधसे मुक्त होनेके लिये यह सूक्त है ऐसा कहना कठिन है। अब इस सूक्तमें जो एकवचनमें प्रयोग हैं उनको देखिये--

एकवचनके प्रयोग

इस सूक्तमें निम्नलिखित मंत्रोंमें एकवचनके प्रयोग हैं —

१ मे विमन्यवः परा पतन्ति- मेरे उत्साही विचार-प्रवाह दूरतक भागते हैं, (मं. ४)

२ मे धीतयः परा यन्ति- मेरी बुद्धियाँ दूर जाती हैं, (मं. १६)

३ मे मधु आभृतं- मेरा मधुररस भरा पडा है, (मं.१७)

४ मे गिरः जुषत— मेरी स्तुतिका सेवन करो, (मं.१८)

५ मे हवं श्रुधि— मेरी प्रार्थना सुन, (मं. १९)

६ अवस्युः त्वां आ चके— सुरक्षा चाहनेवाला मैं तुम्हारी स्तुति करता हूं। (मं. १९)

उपासकके विषयमें एकवचनी प्रयोग ये हैं। उपासना करनेवाला वैयक्तिक भाव बोलता है यह ठीकही है, पर जिस समय वह बंधनसे मुक्त होनेकी बात कहता है, उस समय 'नः पाशं उन्मुमुग्धि।' (मं. २१) हम सबके पाश खोल दो ऐसा कहता है। वैदिक मुक्ति सांघिक है यह इससे स्पष्ट हो जाता है। कुछ पाश व्यक्तिके भी होते हैं, उसका विचार जहां वैसा भाव आ जायेगा वहां किया जायगा। इस सूक्तमें सामुदायिक बंधन निवृत्तिकी प्रार्थना है यह विशेष देखने योग्य है।

(३) प्रिय प्रजापति

(ऋ. १।२६) आजीगर्तिः शुनःशेपः स कृत्रिमो वैश्वामित्रो देवरातः । अग्निः । गायत्री ।

वसिष्वा हि मियेध्य वस्त्राण्यूर्जां पते	। सेमं नो अध्वरं यज	१
नि नो होता वरेण्यः सदा यविष्ठ मन्मभिः	। अग्ने दिवित्मता वचः	२
आ हि ष्मा सूनवे पितापिर्यजत्यापये	। सखा सख्ये वरेण्यः	३
आ नो बर्ही रिशादसो वरुणो मित्रो अर्यमा	। सीदन्तु मनुषो यथा	४
पूर्व्य होतरस्य नो मन्दस्व सख्यस्य च	। इमा उ षु श्रुधी गिरः	५
यच्चिद्धि शश्वता तना देवंदेवं यजामहे	। त्वे इद्धूयते हविः	६
प्रियो नो अस्तु विश्पतिर्होता मन्द्रो वरेण्यः	। प्रियाः स्वग्नयो वयम्	७

स्वग्नयो हि वार्यं देवासो दधिरे च नः । स्वग्नयो मनामहे ८
अथा न उभयेषाममृत मर्त्यानाम् । मिथः सन्तु प्रशस्तयः ९
विश्वेभिरग्ने अग्निभिरिमं यज्ञमिदं वचः । चनो धाः सहसो यहो १०

अन्वयः- हे मियेध्य ऊर्जां पते ! वस्त्राणि वसिष्व हि । सः नः इमं अध्वरं यज ॥ १ ॥

हे सदा यविष्ठ अग्ने ! नः वरेण्यः होता मन्मभिः दिविमता वचः नि (सीद) ॥ २ ॥

वरेण्यः पिता सूनवे, आपिः आपये, सखा सख्ये आ यजति स्म ॥ ३ ॥

रिशादसः वरुणः मित्रः अर्यमा नः बर्हिः आ सीदन्तु, यथा मनुषः ॥ ४ ॥

हे पूर्व्यः होतः ! नः अस्य सख्यस्य च मन्दस्व । इमाः गिरः उ सु श्रुधि ॥ ५ ॥

यत् चित् हि शश्वता तना देवंदेवं यजामहे, (तत्) हविः त्वे इत् हूयते ॥ ६ ॥

विश्पतिः, होता, मन्द्रः, वरेण्यः, नः प्रियः अस्तु । वयं स्वग्नयः प्रियाः (भूयास्म) ॥ ७ ॥

स्वग्नयः देवासः नः वार्यं दधिरे । स्वग्नयः च मनामहे ॥ ८ ॥

हे अमृत ! अथ मर्त्यानां नः उभयेषां मिथः प्रशस्तयः सन्तु ॥ ९ ॥

हे सहसः यहो अग्ने ! विश्वेभिः अग्निभिः इमं यज्ञं इदं वचः चनः धाः ॥ १० ॥

अर्थ- हे पवित्र और बलोंके स्वामी ! बलोंको पहनो । और वह (तू) हमारे इस यज्ञका यजन करो ॥१॥

हे सदा तरुण अग्नि देव ! (तू) हमारा श्रेष्ठ होता है, (वह तू हमारे) मननीय दिव्य वचन (सुननेके लिये इस यज्ञमें आकर यहां) बैठो ॥२॥

श्रेष्ठ पिता अपने पुत्रको, बन्धु अपने बन्धुको, और मित्र अपने मित्रको (वैसा यह अग्निदेव हमें) सहायता देवे ॥३॥

शत्रुनाशक वरुण मित्र और अर्यमा हमारे आसनोंपर बैठें जैसे मनुष्य बैठते हैं (अथवा जैसे मनुके यज्ञमें बैठे थे) ॥४॥

हे प्राचीन होता ! हमारे इस मित्रभावसे (तुम) प्रसन्न हो । (और हमारा) यह भाषण उत्तम रीतिसे सुनो ॥५॥

जिस तरह शाश्वत कालसे और सनातन रीतिसे प्रत्येक देवका हम यजन करते आये हैं, (वही) हवि तुम्हें दिया जा रहा है ॥६॥

प्रजाओंका पालक, हवनकर्ता, आनन्दित और श्रेष्ठ (यह अग्नि) हमारे प्रिय हो। हम भी उत्तम अग्निसे युक्त होकर उसके प्रिय बनें ॥७॥

उत्तम अग्निसे युक्त देवोंने हमारे लिये श्रेष्ठ ऐश्वर्य धारण कर रखा है । (इसलिये हम) उत्तम अग्निसे युक्त होकर (इस देवके नामका) मनन करते हैं ॥८॥

हे अमर देव ! (तुम अमर हो) और हम मर्त्य हैं (अतः) हम दोनोंके परस्पर प्रशंसायुक्त भाषण होते रहें ॥९॥

हे बलके साथ प्रकट होनेवाले अग्निदेव ! सब अग्नियोंके साथ यहां इस यज्ञका और इस स्तोत्रका (स्वीकार करके हमारे लिये पर्याप्त) अन्नका प्रदान करो ॥१०॥

प्रिय प्रभुकी उपासना

सब वस्तुओंसे प्रभुही अत्यंत प्रिय है इसलिये भक्तजन उसकी इस तरह प्रार्थना करें—

'हे सबसे अत्यंत पवित्र और सब प्रकारका बल देनेवाले प्रभो! तुम अपने प्रकाशरूपी वस्त्रोंको पहनकर प्रकट हो जाओ और हम जिस यज्ञका प्रारंभ कर रहे हैं उसको यथायोग्य रीतिसे संपन्न करो । (१) हे प्रभो ! तुम सदा तरुण हो, (बाल्य और वार्धक्य ये अवस्थाएं तुम्हारे लिये नहीं हैं,) तुमही हमारे श्रेष्ठ सहायक हो, इसलिये आओ, यहां विराजमान होकर हमारा काव्यगायन सुनो (२) जैसा पिता प्रेमसे अपने पुत्रकी सहायता करता है, भाई अपने भाईको हर प्रकारकी मदद पहुंचाता है, और मित्र अपने मित्रका सदा हित ही करता है, वैसाही (तुम हमारे पिता, बन्धु और मित्र हैं अतः उस भावसे हम सबकी सहायता करो । (३) जैसे मनुष्य (अपने मित्रके घरमें आकर वहां प्रेमसे बैठते हैं वैसे ही) तुम मित्रभावसे आकर हमारे यहां बैठो (और हमारे सहायक बनो) । (४) तुम सनातन यज्ञकर्ता हो । मित्रभावसे

लिये इस हमारे आदरातिथ्यसे तुम आनन्द प्रसन्न हो जाओ और हमारा भाषण सुनो। (५) जैसी सनातन समयसे देवताओंका सत्कार करनेकी रीति चली आ रही है, उसी पद्धतिके अनुसार हम तुम्हारा हविष्यान्न अर्पण द्वारा पूजन कर रहे हैं। (६) तुमही हम सबका अच्छा पालनकर्ता हो, तुम ही सबका याजक हो, तुम ही सबका हर्ष बढानेवाले हो, तुम ही सबसे श्रेष्ठ हो। हमारे लिये तुम ही अत्यंत प्रिय हो। हम भी इस शुभ कर्म द्वारा तुम्हारे लिये प्रिय होकर रहें। (७) उत्तम तेजस्वी देवोंने अनेक प्रकारसे उत्तमसे उत्तम धन ऐश्वर्य आदि हमारे हितके लिये यहां धारण करके रख दिया है, हम भी तेजस्वी बनकर उसका अच्छीतरह मनन करते हैं। (८) हे देव! तुम अमर हो और हम मरणधर्मा हैं। हम और तुम मिलकर परस्पर सहायक हो जाय और अपूर्व यश निर्माण करनेवाले बने। (९) हे बलके साथ प्रकट होनेवाले प्रभो! सब अपने तेजस्वी सामर्थ्योंके साथ प्रकट होकर हमारे इस यज्ञकर्मको सफल बनाओ और हमारा स्तोत्र सुनकर, हमें सब प्रकारका अन्न धन आदि उत्तम प्रकारसे प्रदान करो जिससे हम सुखी बनें। (१०)

इस सूक्तके आधारसे इसतरह पाठक उपासना करें, यह संपूर्ण सूक्त उपासनाके लिये अत्यंत उत्तम है और इसमें 'सख्य भक्ति' अत्यंत उत्कट रूपसे है।

बहुवचनमें प्रयोग

इस सूक्तमें निम्नलिखित प्रयोग बहुवचनमें हैं—

१ नः अध्वरं यज— हमारे यज्ञका यजन कर (मं. १)

२ नः वचः— हमारा भाषण, हमारी प्रार्थना, (मं. २)

३ नः बर्हिः आ सीदन्तु— हमारे आसनोंपर बैठें, मं. ४)

४ नः गिरः सु श्रुधी— हमारा भाषण सुनो, (मं.५)

५ देवं यजामहे— देवताका यजन हम करते हैं, (मं.६)

६ विश्पतिः नः प्रियः अस्तु— प्रजाका पालन करनेवाला प्रभु हमारे लिये प्रिय हो, (मं .७)

७ वयं प्रियाः— हम प्रिय बनें, (मं. ७)

८ देवासः नः वार्यं दधिरे—देवोंने हमारे लिये धन दिया है, (मं.८)

९ मनामहे— हम मनन करेंगे, प्रभुके गुणोंका मनन करेंगे, (मं. ८)

१० नः मिथः प्रशस्तयः सन्तु— हमारे परस्पर भाषण आदरपूर्वक होते रहें, (मं. ९)

इस तरह इस सूक्तके सभी वचन बहुवचनमें हैं। यह एक भी वचन ऐसा नहीं है कि जो एकवचनमें हो। अतः यह संपूर्ण सूक्त सामुदायिक उपासनाके लिये अत्यंत उपयोगी सूक्त है ऐसा हम कह सकते हैं। एक व्यक्तिके हितके लिये यह एक भी निर्देश नहीं हैं, और सबके सब निर्देश सामूहिक जीवनके निदर्शक हैं।

मर्त्य और अमर

नवम मंत्रमें बडे महत्त्वकी प्रार्थना है। 'हम उपासकजन मर्त्य हैं और हमारा उपास्य अमर है। हमारा यह संबंध उपासक उपास्यका है, जो मर्त्य और अमरका संबंध है। हम परस्परकी सहायता करेंगे और परस्परका हित करेंगे।' यहां गीताके वचन जैसाही वाक्य है।

> देवान् भावयतानेन ते देवा भावयन्तु वः।
> परस्परं भावयन्तः श्रेयः परं अवाप्स्यथ ॥
> (गी. ३।११)

यज्ञसे देवोंकी संभावना करो, और देव तुम्हारी संभावना करें। तुम और देव ये दोनों परस्परोंकी संभावना करते हुए परस्परका श्रेय संपादन करो।' इसीतरह यहाँ कहा है कि 'मर्त्य और अमर परस्परकी सहायता करें।'

आदर्श पुरुष

इस सूक्तद्वारा निम्नलिखित प्रकार आदर्श पुरुष जनताके सामने रखा गया है—

१ मियेध्यः— पवित्र,

२ ऊर्जां पतिः—नानाप्रकारके बलोंको धारण करनेवाला,

३ अ-ध्वरं यज— अकुटिल अथवा हिंसारहित कर्मोंको करनेवाला, (मं. १)

४ यविष्ठः— तरुण (वृद्ध होनेपर भी तारुण्यके उत्साहसे युक्त),

५ वरेण्यः— श्रेष्ठ, वरिष्ठ, (मं. २-३)

६ पिता,आपिः,सखा— पितृवत्, बन्धुवत् और मित्रवत् आचरण करनेवाला, (मं. ३)

७ रिशादस (रिश्-अदस्)— शत्रुका नाश करनेवाला, (मं. ४)

८ विश्पतिः (विश्-पतिः)— प्रजापालक, प्रजारक्षक,

९ मन्द्रः— आनंदित, प्रसन्नचित्त,

१० प्रियः—सबको प्रिय, (मं. ७)

११ सहसः यहुः— बलसे प्रकट होनेवाला, प्रकट होते ही बल दिखानेवाला, (मं. १०)

ये शुभ गुण धारण करनेवाला वीर जैसा दखिना, वैसा आदर्श पुरुष इस सूक्तने पाठकोंके सन्मुख रखा है।

(४) श्रेष्ठ देवकी भक्ति

(ऋ.१।२७) आजीगर्तिः शुनःशेपः स कृत्रिमो वैश्वामित्रो देवरातः। १-१२ अग्निः, १३ देवाः १-१२ गायत्री, १३ त्रिष्टुप्।

अश्वं न त्वा वारवन्तं वन्दध्या अग्निं नमोभिः । सम्राजन्तमध्वराणाम् १

स घा नः सूनुः शवसा पृथुप्रगामा सुशेवः । मीढ्वाँ अस्माकं बभूयात् २

स नो दूराच्चासाच्च नि मर्त्यादघायोः । पाहि सदमिद् विश्वायुः ३

इममू षु त्वमस्माकं सनिं गायत्रं नव्यांसम् । अग्ने देवेषु प्र वोचः ४

आ नो भज परमेष्वा वाजेषु मध्यमेषु । शिक्षा वस्वो अन्तमस्य ५

विभक्तासि चित्रभानो सिन्धोरूर्मा उपाक आ । सद्यो दाशुषे क्षरसि ६

यमग्ने पृत्सु मर्त्यमवा वाजेषु यं जुनाः । स यन्ता शश्वतीरिषः ७

नकिरस्य सहन्त्य पर्येता कयस्य चित् । वाजो अस्ति श्रवाय्यः ८

स वाजं विश्वचर्षणिरर्वद्भिरस्तु तरुता । विप्रेभिरस्तु सनिता ९

जराबोध तद् विविड्ढि विशेविशे यज्ञियाय । स्तोमं रुद्राय दृशीकम् १०

स नो महाँ अनिमानो धूमकेतुः पुरुश्चन्द्रः । धिये वाजाय हिन्वतु ११

स रेवाँ इव विश्पतिर्दैव्यः केतुः शृणोतु नः । उक्थैरग्निर्बृहद्भानुः १२

नमो महद्भ्यो नमो अर्भकेभ्यो नमो युवभ्यो नम आशिनेभ्यः ।
यजाम देवान् यदि शक्नवाम मा ज्यायसः शंसमा वृक्षि देवाः १३

अन्वयः- वारवन्तं अश्वं न अध्वराणां सम्राजन्तं अग्निं नमोभिः वन्दध्यै ॥ १ ॥

अर्थ-बालोंवाले-अयालवाले सुंदर घोडेके समान, अहिंसायुक्त यज्ञकर्मको निभानेवाले, (ज्वालाओंसे) प्रदीप्त हुए अग्निको हम नमस्कारोंसे सुपूजित करते हैं ।।१॥

शवसा सूनुः, पृथुप्रगामा, सः घा नः सुशेवः, अस्माकं मीढ्वान् बभूयात् ॥ २ ॥

बलके लियेहि उत्पन्न हुए, सर्वत्र गमन करनेवाले वह अग्निदेव निश्चयसे हमारे लिये सुखसे सेवा करनेयोग्य, तथा हमारे लिये सुख देनेवाले हों ॥२॥

विश्वायुः स दूरात् च आसात् च अघायोः मर्त्यात् नः, सदं इत्, नि पाहि ॥ ३ ॥

हे संपूर्ण आयुके प्रदाता ! वह (तुम) दूरसे पापसे पापी मनुष्यसे हम सबकी, सदाके लिये सुरक्षा करो ।। ३॥

हे अग्ने ! त्वं अस्माकं इमं उ सु सनिं, नव्यांसं गायत्रं देवेषु प्रवोचः ॥ ४ ॥

हे अग्निदेव ! तुम हमारे इस दानकी, और नवीन गायत्री छन्दके स्तोत्र की बात देवोंसे कहो ।।४।।

परमेषु वाजेषु नः आ भज । मध्यमेषु आ (भज)। अन्तमस्य वस्वः शिक्ष ॥ ५ ॥

उच्च कोटीके बल हमें दो। मध्यम कोटीके(बल भी हमें दो)। तथा पाससे मिलनेवाले धन भी हमें प्रदान करो ॥५॥

हे चित्रभानो ! सिन्धोः उपाके ऊर्मौ (इव), विभक्ता असि, दाशुषे सद्यः क्षरसि ॥ ६ ॥

हे विलक्षण तेजस्वी देव ! सिन्धुके पास तरङ्ग (की तरह, तुम) धनोंका बंटवारा करनेवाला हो; दाताको तो तुम तत्काल-ही (धन) देता है ॥६॥

हे अग्ने ! पृत्सु यं मर्त्यं अवाः, यं वाजेषु जुनाः, सः शश्वतीः इषः यन्ता ॥ ७ ॥

हे अग्निदेव ! युद्धमें जिस मनुष्यकी तुम सुरक्षा करते हो, जिसको तुम रणोंमें जानेके लिये उत्साहित करते हो, वह शाश्वत अन्नोंका नियामक होता है ॥७॥

हे सहस्य ! अस्य कयस्य चित् पर्येता नकिः, (अस्य) वाजः श्रवाय्यः अस्ति ॥ ८ ॥

हे शत्रुके दमनकर्ता ! इसको घेरनेवाला कोई भी नहीं है, (क्योंकि इसकी) शक्ति प्रशंसनीय है ॥ ८ ॥

विश्वचर्षणिः सः अर्वद्भिः वाजं तरुता अस्तु, विप्रेभिः सनिता अस्तु ॥ ९ ॥

सर्व मानवोंका (हित करनेवाला) वह (देव हमें) घोडोंके साथ युद्धसे पार करनेवाला होवे, (तथा) ज्ञानियोंके साथ (धनका) प्रदानकर्ता हो जावे ॥ ९ ॥

हे जराबोध ! विशे विशे यज्ञियाय, तत् रुद्राय दृशीकं स्तोमं विविड्ढि ॥ १० ॥

हे प्रार्थना सुननेके लिये जाग्रत रहनेवाले देव ! प्रत्येक मनुष्यके (कल्याणके लिये चलाये इस) यज्ञमें रुद्र देवके प्रीतिके लिये सुन्दर स्तोत्र, (गाया जाता है अतः यहां तुम) प्रवेश करो ॥ १० ॥

सः महान् अनिमानः धूमकेतुः पुरुश्चन्द्रः नः धिये वाजाय हिन्वतु ॥ ११ ॥

वह बडा अपरिमेय धूमक झण्डेवाला अत्यंत तेजस्वी देव हमें बुद्धि और बल (की वृद्धि) के लिए प्रेरित करे ॥ ११ ॥

सः दैव्यः केतुः, विश्पतिः बृहद्भानुः अग्निः, रेवान् इव, उक्थैः नः शृणोतु ॥ १२ ॥

वह प्रजापालक, दिव्यसामर्थ्यका झण्डा जैसा, तेजस्वी अग्नि देव, धनवानोंकी तरह, स्तोत्रोंके साथ हमारी (प्रार्थनाको) सुनें ॥ १२ ॥

महद्भ्यः नमः, अर्भकेभ्यः नमः, युवभ्यः नमः, आशिनेभ्यः नमः । यदि शक्नवाम, देवान् यजाम । हे देवाः ! ज्यायसः आशंसं मा वृक्षि ॥ १३ ॥

बडोंके लिये नमस्कार, बालकोंके लिये प्रणाम, तरुणोंके लिये नमन, और वृद्धोंके लिये भी हम वन्दना करते हैं। जितना सामर्थ्य होगा, (उतनेसे हम) देवोंका यजन करेंगे । हे देवों (उस एक) श्रेष्ठ देवकी प्रशंसा करनेमें (हमसे) त्रुटी न हो ॥ १३ ॥

श्रेष्ठ प्रभुकी उपासना

जिस तरह अयालवाला घोडा सुंदर दीखता है, वैसाही ज्वाला (रूपी अयाल) से युक्त प्रदीप्त अग्नि (रूपी घोडा) अति सुंदर दीखता है । इस यज्ञवेदीपर प्रदीप्त हुए इस अग्निको हम नमस्कार करते हैं । (१) यह देव बलके विविध कार्य करनेके लियेही प्रकट हुआ है, वह सर्वत्र गमन भी करता है अतः यह हमें सुख देवे । (२) वह देव हमें दीर्घ आयु देता है, वह सब स्थानोंसे (अर्थात् पाससे और दूरसे) पापी मनुष्योंके कपट जालसे हमें बचावे । (३) हमें उच्च, मध्यम आदि सब प्रकारके बल दो, तथा उन बलोंसे हमें सब प्रकारके धन पास होनेके समान प्राप्त हों । (५) जिस तरह समुद्र तरङ्गोंके कारण उछलता है वैसा तुम प्रेमसे उछलो और हमें सब धन दो । (६) जिसपर तुम्हारी दया है उसको अक्षय धन प्राप्त होते हैं । और वह नियामक होता है । (७) उसको घेरनेवाला कोई नहीं रहता, इतनी उसकी विशाल शक्ति होती है । वह संपूर्ण रूपसे शत्रुका दमन करता है । (८) वह देव सब मानवोंका हित करता है वह हमें युद्धोंमें विजय देवे और ज्ञानियोंके साथ रखे । (९) वह अपरिमित बलसे युक्त देव हमें बुद्धि और बल बढानेके कार्योंमें प्रेरित करे । (११) वह प्रजापालन करता है, दिव्य सामर्थ्यसे युक्त है, वह हमारे

प्रार्थना सुनें। (१२) बालक, तरुण, बडे और वृद्ध जो भी पुरुष हैं (वे सब इसी प्रभुके रूप हैं,) अतः उनको नमन करते हैं। जहांतक हमारी शक्ति रहेगी तबतक उन सब देवोंके लिये हम यज्ञ करते रहेंगे, इसमें हमसे त्रुटी न हो। (१३)

इस तरह पाठक उपासना करें। यह सूक्त उपासनेके लिये बडाही अच्छा है। और इसमें विश्वरूप प्रभुकी भक्ति उत्तम रीतिसे करनेकी विधि बतायी है। प्रारंभ अग्निके नामसे करके अन्तिम मंत्रमें छोटे बडे सभी रूपोंमें प्रकट होनेवाले प्रभुकी उपासना कही है।

विश्वरूपकी उपासना

(अर्भक) बालक, (युवा) तरुण, (महान्) बडे और (आशीन) वृद्ध इन चार अवस्थाओंमें सब प्राणी रहते हैं। प्रभु इन चार अवस्थाओंमें रहनेवाले प्राणियोंके रूपमें इस विश्वमें हैं। यहाँ अग्नि अथवा रुद्र इन रूपोंमें प्रकट हुआ है ऐसा कहा है। यह मंत्र यहां अग्नि सूक्तमें है। रुद्र सूक्तमें इसका रूप विभिन्न है, देखिये—

> **नमो ज्येष्ठाय च कनिष्ठाय च नमः पूर्वजाय चापरजाय च नमो मध्यमाय चापगल्भाय च नमो जघन्याय च बुध्न्याय च॥** (वा. यजु. १६।३२)

'ज्येष्ठ, कनिष्ठ, पूर्वज, अपरज, मध्यम, अपगल्भ, जघन्य, बुध्न्य इन सब रुद्र रूपोंके लिये नमन है।' यहां आठ पद हैं, परंतु तात्पर्य एकही है। जितने भी रूप दिखाई देते हैं वे सबके सब रुद्र देवताके रूप हैं। यहां अग्निके हैं। अग्नि और रुद्र एकही देवके दो नाम है, अग्निके उद्देश्यसे उपनिषदमें कहा है–

> **अग्निर्यथैको भुवनं प्रविष्टो रूपं रूपं प्रतिरूपो बभूव। एकस्तथा सर्वभूतान्तरात्मा रूपं रूपं प्रतिरूपो बहिश्च॥** (कठ उ. २।५।९)

'अग्नि जैसा भुवनमें प्रविष्ट होकर प्रत्येक रूपमें उसके आकारवाला होकर रहा है, वैसा एकही सर्व भूतोंका अन्तरात्मा है जो प्रत्येक रूपमें प्रतिरूप हुआ है और बाहर भी है।' अग्नि सब पदार्थोंमें है, और सबके रूपोंका धारण करके रहता है, वैसा ही सर्वभूतान्तरात्मा है। रुद्र भी वैसाही है। यही बात इस तेरहवें मंत्रमें कही है। छोटे, बडे, जवान, बालक और वृद्धमें संपूर्ण जगत् समाया है। यह सब एकही देवताका रूप है। जिसके साथ मनुष्यका संबंध आता है वह बालक, तरुण, मध्यम, वृद्ध, जीर्ण, पूर्वज, वंशज आदिमेंसे कोई एक अवस्था होता है। इनमेंसे प्रत्येक प्रभुका रूप है और वह प्रभुके समान संमानके योग्य है। अतः किसीके साथ व्यवहार करना हो तो प्रभुके साथ व्यवहार करनेके समान परम आदरसे करना चाहिये। ऐसा व्यवहार करनाही जीवनसाफल्यका अनुष्ठान है। जो करेंगे वेही सफल हो सकते हैं।

तेरहवें मंत्रका उत्तरार्ध कहता है कि— 'जबतक शरीरमें शक्ति है तबतक हम इस प्रभुके विश्वरूपकी सेवा करेंगे, सब विश्वरूपमें सुव्यवस्थित रहे इस श्रेष्ठ प्रभुकी उपासना करनेकी विधिमें हमसे किसीतरह कोई त्रुटी न हो।' अर्थात् हमसे विश्वरूपकी योग्य सेवा होती रहे।

आदर्श पुरुष

इस सूक्तमें जो आदर्श पुरुष वर्णन किया है उसके ये गुण हैं—

१ **अध्वराणां सम्राट्**– अकुटिल कर्मोंका सम्राट् हिंसारहित कर्मोंसे प्रकाशमान् (मं. १)

२ **शवसा सूनुः**– बलसे उत्पन्न होनेवाला, बलके साथ प्रकट होनेवाला, बलके प्रचण्ड कार्य करनेके लिये उत्पन्न (मं.२)

३ **पृथु-प्रगामा**– विशेष गतिशील, सर्वत्र गतिमान, सर्वत्र गमन करनेवाला,

४ **सुशेवः**– सेवा करनेयोग्य,

५ **मीढ्वान्**– सुखदायी, इष्ट सुख देनेवाला, (मं. २)

६ **विश्वायुः**– पूर्णायु, पूर्ण आयुतक कार्य करनेवाला,

७ **अघायोः पाहि**– पापीसे बचानेवाला, (मं. ३)

८ **परमेषु मध्यमेषु, वाजेषु भजकः**– परम और मध्यम ऐसे सब बल बढानेवाला,

९ **अन्तमस्य वस्वः शिक्षकः**– पासका धन देनेवाला, (मं. ५)

१० **पृत्सु अवाः**– युद्धोंमें सुरक्षा करनेवाला,

११ **इषः यन्ता**– धनों और अन्नोंका नियामक, (मं. ७)

१२ **अस्य पर्येता नकिः**– इसको घेरनेवाला कोई नहीं है,

१३ **अवाय्य वाजः**– यशस्वी बलसे युक्त, (मं. ८)

१४ **विश्वचर्षणिः**– सब मानवोंका हितकारी,

१५ **तरुता**– संकटोंसे पार करनेवाला,

१६ **विप्रेभिः सनिता**– ज्ञानियोंके साथ रहनेवाले, (मं. ९)

१७ जराबोध— अर्चना सुननेके लिये जागनेवाला

१८ विशोविशो यज्ञियाय तत्— प्रत्येक पूजनीय मनुष्यके लिये यह सुख देनेवाला, (मं. १०)

१९ महान् अनिमानः— अत्यंत अप्रतिम,

२० पुरुश्चन्द्रः— तेजस्वी,

२१ धिये वाजाय— बुद्धि और बलके लिये बलशील, (मं. ११)

२२ रेवान्— धनवान्,

२३ विश्पतिः— प्रजापालक,

२४ बृहद्भानुः— अत्यंत तेजस्वी, (मं. १२)

ये विशेषण आदर्श पुरुषका आदर्श बता रहे हैं। इनसे व्यक्त होनेवाले गुणोंका मनन करके पाठक इन गुणोंको अपनेमें ढालनेका यत्न करें।

बहुवचनके प्रयोग

इस सूक्तमें निम्नलिखित प्रयोग बहुवचनमें हैं—

१ नः सुशेवः— हमारे लिये सेवा करने योग्य,

२ अस्माकं मीढ्वान्— हमें सुख देनेवाला, (मं. २)

३ नः पाहि— हमें सुरक्षित रख,

४ अस्माकं नव्यांसं— हमारा नया स्तोत्र, (मं. ४)

५ नः भज परमेषु— हमें परमश्रेष्ठ बलोंमें रख, (मं. ५)

६ नः वाजाय हिन्वतु— हमारे बलके लिये प्रेरित करे (मं. ११)

७ नः शृणोतु— हमारा भाषण सुने, (मं. १२)

८ देवान् यजाम— हम देवोंकी पूजा करें,

९ यदि शक्नवाम— यदि हममें शक्ति हो,

इतने प्रयोग इस सूक्तमें बहुवचनमें हैं। इससे बहुत मानवोंके हितका संबंध इस सूक्तके साथ है, किसी एक व्यक्तिके हितका नहीं, यह स्पष्ट है। एकवचनके प्रयोग इस सूक्तमें नहीं है। अर्थात् किसी एक मनुष्यके बंधनकी निवृत्ति करनेका यहां उद्देश नहीं है, परंतु मानवसमाजके सुखका विचार यहां है।

(५) यज्ञकी तैयारी

(ऋ. १।२८) आजीगर्तिः शुनःशेपः स कृत्रिमो वैश्वामित्रो देवरातः। १-४ इन्द्रः। ५-६ उलूखलं, ७-८ उलूखलमुसले, ९ प्रजापतिर्हरिश्चन्द्रः, (अधिषवण-) चर्म सोमो वा। १-६ अनुष्टुप्, ७-९ गायत्री।

यत्र ग्रावा पृथुबुध्न ऊर्ध्वो भवति सोतवे । उलूखलसुतानामवेद्विन्द्र जल्गुलः १
यत्र द्वाविव जघनाधिषवण्या कृता । उलूखलसुतानामवेद्विन्द्र जल्गुलः २
यत्र नार्यपच्यवमुपच्यवं च शिक्षते । उलूखलसुतानामवेद्विन्द्र जल्गुलः ३
यत्र मन्थां विबध्नते रश्मीन् यमितवा इव । उलूखलसुतानामवेद्विन्द्र जल्गुलः ४
यच्चिद्धि त्वं गृहेगृह उलूखलक युज्यसे । इह द्युमत्तमं वद जयतामिव दुन्दुभिः ५
उत स्म ते वनस्पते वातो वि वात्यग्रमित् । अथो इन्द्राय पातवे सुनु सोममुलूखल ६
आयजी वाजसातमा ता ह्युच्चा विजर्भृतः । हरी इवान्धांसि बप्सता ७
ता नो अद्य वनस्पती ऋष्वावृष्वेभिः सोतृभिः । इन्द्राय मधुमत् सुतम् ८
उच्छिष्टं चम्वोर्भर सोमं पवित्र आ सृज । नि धेहि गोरधि त्वचि ९

अन्वयः— हे इन्द्र ! यत्र सोतवे पृथुबुध्नः ग्रावा ऊर्ध्वः भवति, (तत्र) उलूखलसुतानां अव इत् जल्गुलः ॥ १ ॥

अर्थ— हे इन्द्र ! जहां सोमरस चुआनेके लिये बडे मूलवाला पत्थर ऊपर उठाया जाता है, (वहां) ओखलसे निचोडा गया सोमरस पास आकर पान करो ॥ १ ॥

हे इन्द्र ! यत्र अधिषवण्या द्वौ जघना इव कृता० ॥ २ ॥

हे इन्द्र ! जहां सोम कूटनेके दो फलक दो जंघाओंकी तरह विस्तृत रखे होते हैं० ॥ २ ॥

यत्र नारी अपच्यवं उपच्यवं च शिक्षते० ॥ ३ ॥

जहां (यजमान की) पत्नी दूर होने और पास आनेकी शिक्षा पाती है० ॥ ३ ॥

यत्र मन्थां, रश्मीन् यमितवै इव, विबध्नते० ॥ ४ ॥

. जहां मन्थन दण्ड, लगाम पकडनेके समान, बांधा जाता है, वहां ओखलसे निचोडे सोमरसको पास आकर पान करो ॥ ४ ॥

हे उलूखलक ! यत् चित् हि त्वं गृहेगृहे युज्यसे, इह, जयतां इव दुन्दुभिः, द्युमत्तमं वद ॥ ५ ॥

हे ओखल ! यद्यपि घरघरमें तुमसे काम लिया जाता है, (तथापि) यहां विजयी लोगोंके ढोलकी तरह, तुम बडा ध्वनि कर ॥ ५ ॥

हे वनस्पते ! उत ते अग्रं इत् वातः वि वाति स्म । हे उलूखल ! अथो इन्द्राय पातवे सोमं सुनु ॥ ६ ॥

हे वनस्पते ! तुम्हारे सामने वायु बहता है। हे ओखल ! अब इन्द्रके पानके लिये सोमका रस निचोडो ॥ ६ ॥

आ यजी, वाजसातमा, ता हि, अन्धांसि बप्सता हरी इव, उच्चा विजर्भृतः ॥ ७ ॥

यज्ञके साधन, अन्न देनेवाले, वे दोनों (पत्थर) खाद्य खानेवाले इन्द्रके दोनों घोडोंकी तरह, उच्चस्वरसे विहार करते हैं ॥ ७ ॥

अद्य वनस्पती ता ऋष्वेभिः सोतृभिः ऋष्वौ इन्द्राय मधुमत् नः सुतम् ॥ ८ ॥

आज वृक्षसे उत्पन्न (ये दोनों) फलक दर्शनीय स्तोताओंके साथ दर्शनीय (बने तुम दोनों ओखल और मूसल) इन्द्रके लिये मीठा सोमरस हमारे (यज्ञमें) निकालो ॥ ८ ॥

चम्वोः शिष्टं उत् भर । सोमं पवित्रे आ सृज । गोः त्वचि अधि नि धेहि ॥ ९ ॥

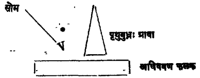
दोनों पात्रोंसे अवशिष्ट रस उठालो । सोमको छाननीके ऊपर रखो, गोचर्म पर रखो ॥ ९ ॥

यज्ञकी तैयारी करना

इस सूक्तमें यज्ञकी तैयारी करनेकी विधि लिखी है। ओखल और मूसल ये दो साधन कूटनेके लिये हैं । इसमें चावल कूटकर साफ किये जाते हैं। (**अन्धांसि बप्सता**) अन्न चबाया जाता है वैसा धान कूटा जाता है । (मं. ७) (**आ- यजी वाजसाता**) वे ऊखल और मूसल ये दोनों यज्ञके साधन हैं और ये धान-चावल-तैयार करके देते हैं। (**उच्चा विजर्भृतः**) उच्च स्वरसे शब्द करते हुए मूसल यहां नाचते हैं, विहार करते हैं (मं. ७)। धान कूटनेके पश्चात् वह छजमें रखकर थोडा थोडा नीचे फेंका जाता है, इस समय (**वनस्पते ! अग्रं वातः वाति** । मं. ६) वनस्पतिसे उत्पन्न हुए ओखलके सामनेके स्थानमें वायु चलता है, वहां उस वायुसे भूंसा पृथक् किया जाता है और शुद्ध चावल पृथक् होते हैं। छजसे कूटे चावल वायुमें थोडे थोडे छोड देनेसे भूंसा और चावल अलग अलग होकर भूमिपर गिरते हैं। इस तरह यज्ञके चावल तैयार होते हैं। ऐसे चावलोंमें मिलोंमें साफ किये चावलोंसे जीवन सत्त्व अधिक रहता है।

दहीको मन्थन दण्डसे बिलोनेसे मक्खन ऊपर आता है। इस कार्यके लिये (**नारी अपच्यवं उपच्यवं शिक्षते** । (मं. ३) यजमान पत्नी अपने हाथोंको आगेपीछे करती रहती हैं जिससे (**मन्थां विबध्नते** । मं. ४) मथनेका दण्ड रसीसे बांधा जाता है और इस रसीको आगेपीछे करनेसे दही मथा जाता है और मक्खन ऊपर आता है। इसको तपानेसे उत्तम सुमधुर घी बनता है । यह यजमानपत्नीका कार्य है। कलके निकाले दूधसे आज घी बनता है, वह सबसे उत्तम और स्वादु होता है। यह यज्ञमें बर्ता जाता है।

सोम कूटनेके लिये (**सोतवे पृथुबुध्नः ग्रावा भवति** मं. १)



सोमरस निकालनेके लिये बडे मूलवाला पत्थर आवश्यक होता है। ऐसे पत्थरसे सोम कूटा जाता है। (**द्वौ जघना अधिषवण्या कृता** । मं. २) दो जांघोंके समान दो अधि-

षाण फलक होते हैं। इनपर सोमको रखते हैं और कूटते हैं। पत्थरोंका कूटनेका शब्दभी एक भांतीका शब्द होता है, इसका वर्णन नाचनेके शब्दसे वेदमें किया गया है। 'ओखल और मूसलका उपयोग तो घरघरमें किया जाता है।' (५) पर यहां वह सोम कूटनेके लिये तथा चावल स्वच्छ करनेके लिये किया जाता है। सोम कूटनेके लिये नीचे पत्थरका अथवा लकडीका फट्टा अथवा ओखल रखते हैं उसपर कूटा करते हैं।

सोम अच्छीतरह कूटा जानेपर उससे हाथोंसे और अंगुलियोंसे पकड कर रस निकालते हैं, और उस रसको (**पवित्रे सोमं आ सृज** । मं ९) छाननीपर पर रखते और छानते हैं और उस रसको (**चम्वोः आ भर** । मं. ९) कलशोंमें भर देते हैं। सोमरसपान करनेपर भी जो (**उच्छिष्टं चम्वोः भर** । मं. ९) अवशिष्ट रहता है उसको भी कलशोंमें भर देते हैं।

यह सब यज्ञकी तैयारीका वर्णन है, जो पाठक विचारपूर्वक जान सकता है।

गोचर्म

इस सूक्तके नवम मंत्रमें 'गोचर्म' पर सोम रखो ऐसा कहा है। बहुत विद्वानोंने इसका अर्थ गौके चमडेपर ऐसा अर्थ माना है, पर गौके चर्मपर यह सब रहना कठीण है ऐसा प्रतीत होता है। गौका वध करके उसका चर्म प्राप्त करना असंभवसा प्रतीत होता है क्योंकि गौके नामोंमें '**अ-घ्न्या**'= (अ-वध्य), '**अ-दीना**'= (टुकडे करनेके लिये अयोग्य, जिसको काटा नहीं जाता), '**अ-दिति**'= (जिसको काटा नहीं जाता) ये नाम हैं। ये नाम गौकि अवध्यता सिद्ध करते हैं।

मुग्धा देवा उत शुना यजन्तोत गोरङ्गैः पुरुधा यजन्त

(अथर्व. ७।५।५)

'मूढ याजकही कुत्तेके मांससे और गौके टुकडे करके उनसे हवन करते हैं।' ऐसा कहनेसे गौके वधका निषेधही वेदने किया है। यहां कई कहेंगे कि मृतगौका चर्म लिया जाय तो क्या हर्ज है। पर एक तो मृत पशुका चर्म अपवित्र है वह सोम जैसे पवित्र वस्तुके यजनके स्थानमें लेना अयोग्यही है, यज्ञमें भी वह नहीं लाया जायगा, फिर सोमके रखनेके लिये उसका उपयोग तो कठिनही प्रतीत होता है और जीवित गौका वध तो वेदके मंत्रोंने निषिद्धही माना है फिर इसका विचार कैसा किया जाय यह एक विचारणीय समस्या है।

'गोचर्म' का अर्थ 'कोशोंमें सौ गायोंके रहनेके लिये जितना स्थान आवश्यक है उतना स्थान' ऐसा दिया है। ऐसे विस्तृत स्थानपर सोमको रखना, कूटना, छानना और अनेक ऋत्विजोंका रहना हो सकता है। इसलिये ऐसे विशेष लंबे चौडे स्थानपर सोमरस निकालने की व्यवस्था की जाती थी ऐसा मानना योग्य है। देखो—

दशहस्तेन वंशेन दशवंशान् समंततः ।
पञ्च चाभ्यधिकान् दद्यात् एतद् गोचर्म चोच्यते॥

(वसिष्ठ स्मृति)

इस परिमाणकी भूमिका नाम गोचर्म है। विचार करना चाहिये कि जिस गोचर्मपर सोम रखना आदि लिखा है वह गौका चमडा है या उक्त परिमाणकी भूमी है, यज्ञस्थल है।

(६) गौवें और घोडे

(ऋ. १।२९) आजीगर्तिः शुनःशेपः स कृत्रिमो वैश्वामित्रो देवरातः। इन्द्रः। पंक्तिः।

यच्चिद्धि सत्य सोमपा अनाशस्ता इव स्मसि ।
आ तू न इन्द्र शंसय गोष्वश्वेषु शुभ्रिषु सहस्रेषु तुवीमघ १
शिप्रिन् वाजानां पते शचीवस्तव दंसना ।
आ तू न इन्द्र शंसय गोष्वश्वेषु शुभ्रिषु सहस्रेषु तुवीमघ २
नि ष्वापया मिथूदृशा सस्तामबुध्यमाने ।
आ तू न इन्द्र शंसय गोष्वश्वेषु शुभ्रिषु सहस्रेषु तुवीमघ ३
ससन्तु त्या अरातयो बोधन्तु शूर रातयः ।
आ तू न इन्द्र शंसय गोष्वश्वेषु शुभ्रिषु सहस्रेषु तुवीमघ ४

समिन्द्र गर्दभं मृण नुवन्तं पापयामुया।
आ तू न इन्द्र शंसय गोष्वश्वेषु शुभ्रिषु सहस्रेषु तुवीमघ ५
पताति कुण्डृणाच्या दूरं वातो वनादधि।
आ तू न इन्द्र शंसय गोष्वश्वेषु शुभ्रिषु सहस्रेषु तुवीमघ ६
सर्वं परिक्रोशं जहि जम्भया कृकदाश्वम्।
आ तू न इन्द्र शंसय गोष्वश्वेषु शुभ्रिषु सहस्रेषु तुवीमघ ७

अन्वयः- हे सत्य सोमपाः! यत् चित् हि, अनाशस्ता इव स्मसि। हे तुवीमघ. इन्द्र! सहस्रेषु शुभ्रिषु गोषु अश्वेषु नः आ शंसय ॥ १ ॥

हे शचीवः शिप्रिन् वाजानां पते! तव दंसना (सर्वदा वर्तते०) ॥ २ ॥

मिथूदृशा निष्वापय, अबुध्यमाने सस्ताम्० ॥ ३ ॥

हे शूर! त्या अरातयः ससन्तु। रातयः बोधन्तु० ॥ ४ ॥

हे इन्द्र! अमुया पापया नुवन्तं गर्दभं सं मृण० ॥ ५ ॥

वातः कुण्डृणाच्या वनात् अधि दूरं पताति० ॥ ६ ॥

सर्वं परिक्रोशं जहि। कृकदाश्वं जम्भय० ॥ ७ ॥

अर्थ- हे सत्य स्वरूप सोमपान करनेवाले इन्द्र! जो भी हो, हम बहुत प्रशंसित जैसे नहीं है (यह सत्य है)। तथापि, हे बहुधनवाले इन्द्र! उत्तम सहस्रों गायें और घोडे हमें मिलें (ऐसा) हमें आशीर्वाद दो ॥ १ ॥

हे सामर्थ्यवान्, शिरस्त्राणधारी और सब बलोंके स्वामी इन्द्र! तेरे कर्म (अद्भुत हैं)० ॥ २ ॥

(दोनों दुर्गतियाँ) परस्परकी ओर ताकती हुई सो जांय, वे कभी न जागतीं हुई बेहोश पडीं रहें (अर्थात् हमें उनसे उपद्रव न हो)० ॥ ३ ॥

हे शूर वीर! हमारे शत्रु सोये रहें और मित्र जागते रहें० ॥ ४ ॥

हे इन्द्र! इस पाप विचारमयी वाणीसे बोलनेवाले (शत्रु-रूप) गधेका वध करो० ॥ ५ ॥

विध्वंस करनेवाला झंझावात दूरके वनमें चला जाय० ॥ ६ ॥

आक्रोश करनेवाले सब शत्रुओंका नाश करो। और हिंसकोंका संहार करो। हे बहु धनवाले इन्द्र! सर्वोत्तम सहस्रों गायें और घोडे हमें मिलें ऐसा हमें आशीर्वाद दो ॥ ७ ॥

गौवें और घोडे हमें मिलें

हमें गायें और घोडे मिलें यह इच्छा इस सूक्तमें मुख्य है। इस सूक्तके सभी मंत्रोंमें 'नः आ शंसय' हमें आशीर्वाद मिले, यह बहुवचनमें प्रयोग है, इसलिये केवल किसी एक की भलाईकी इच्छा इसमें नहीं है अपितु सबकी भलाईकी इच्छा इसमें स्पष्ट है।

आदर्श वीर पुरुष

इस सूक्तमें जो आदर्श पुरुष बताया है वह वीर निम्न-लिखित गुणोंसे युक्त है-

१ सत्यः- सत्यका पालन करनेवाला, जिसका जीवन सत्य-मय है,

२ तुवी-मघः- बहुत धनोंसे युक्त, (१)

३ शचीवः- सामर्थ्यवान्,

४ शिप्री- शिरस्त्राण और कवच धारण करनेवाला,

५ वाजानां पतिः- बलों, अन्नों और धनोंका स्वामी, (२)

६ शूरः- शूरवीर, (४)

ये गुण जिसमें विराजते हों ऐसे वीरकी कल्पना पाठक कर सकते हैं, यह वीर इस सूक्तका आदर्श पुरुष है।

(७) उत्तम रथ

(ऋ. १।३०) आजीगर्तिः शुनःशेपः स कृत्रिमो वैश्वामित्रो देवरातः । १-१६ इन्द्रः, १७-१९ अश्विनौ, २०-२२ उषाः । १-१०, १२-१५, १७-२२ गायत्री, ११ पादनिचृद्गायत्री, १६ त्रिष्टुप् ।

आ व इन्द्रं क्रिविं यथा वाजयन्तः शतक्रतुम् । मंहिष्ठं सिञ्च इन्दुभिः १
शतं वा यः शुचीनां सहस्रं वा समाशिराम् । एदु निम्नं न रीयते २
सं यन्मदाय शुष्मिण एना ह्यस्योदरे । समुद्रो न व्यचो दधे ३
अयमु ते समतसि कपोत इव गर्भधिम् । वचस्तच्चिन्न ओहसे ४
स्तोत्रं राधानां पते गिर्वाहो वीर यस्य ते । विभूतिरस्तु सूनृता ५
ऊर्ध्वस्तिष्ठा न ऊतयेऽस्मिन् वाजे शतक्रतो । समन्येषु ब्रवावहै ६
योगेयोगे तवस्तरं वाजेवाजे हवामहे । सखाय इन्द्रमूतये ७
आ घा गमद्यदि श्रवत् सहस्रिणीभिरूतिभिः । वाजेभिरुप नो हवम् ८
अनु प्रत्नस्यौकसो हुवे तुविप्रतिं नरम् । यं ते पूर्वं पिता हुवे ९
तं त्वा वयं विश्ववाराऽऽशास्महे पुरुहूत । सखे वसो जरितृभ्यः १०
अस्माकं शिप्रिणीनां सोमपाः सोमपाव्नाम् । सखे वज्रिन्त्सखीनाम् ११
तथा तदस्तु सोमपाः सखे वज्रिन् तथा कृणु । यथा त उश्मसीष्टये १२
रेवतीर्नः सधमाद इन्द्रे सन्तु तुविवाजाः । क्षुमन्तो याभिर्मदेम १३
आ घ त्वावान्त्मनाप्तः स्तोतृभ्यो धृष्णवियानः । ऋणोरक्षं न चक्र्योः १४
आ यद् दुवः शतक्रतवा कामं जरितॄणाम् । ऋणोरक्षं न शचीभिः १५
शश्वदिन्द्रः पोप्रुथद्भिर्जिगाय नानदद्भिः शाश्वसद्भिर्धनानि ।
स नो हिरण्यरथं दंसनावान्त्स नः सनिता सनये स नोऽदात् १६
आश्विनावश्वावत्येषा यातं शवीरया । गोमद् दस्रा हिरण्यवत् १७
समानयोजनो हि वां रथो दस्रावमर्त्यः । समुद्रे अश्विनेयते १८
न्यघ्न्यस्य मूर्धनि चक्रं रथस्य येमथुः । परि द्यामन्यदीयते १९
कस्त उषः कधप्रिये भुजे मर्तो अमर्त्ये । कं नक्षसे विभावरि २०
वयं हि ते अमन्मह्यान्तादा पराकात् । अश्वे न चित्रे अरुषि २१
त्वं त्येभिरा गहि वाजेभिर्दुहितर्दिवः । अस्मे रयिं नि धारय २२

अन्वयः- वाजयन्तः (वयं) वः शतक्रतुं मंहिष्ठं इन्द्रं, यथा क्रिविं, आ सिञ्चे ॥ १ ॥

यः शुचीनां शतं वा, समाशिरां सहस्रं वा, निम्नं न, आ इत् उ रीयते ॥ २ ॥

अर्थ— सामर्थ्यकी इच्छा करनेवाले (हम) तुम्हारे (कल्याणके) लिये सैंकडों पराक्रम करनेवाले महान् इन्द्रको, जैसे हौजको (पानीसे भरते हैं वैसे सोमरससे) भर देते हैं ॥ १ ॥

जो शुद्ध सोमरसोंके सैंकडों, तथा दुग्धमिश्रित रसोंके सहस्रों प्रवाहोंके पास, जल निम्न स्थलके पास आता है (उस तरह) आता है ॥ २ ॥

यत् शुष्मिणे मदाय एना हि अस्य उदरे, समुद्रः न, व्यचा सं दधे, ॥ ३ ॥

अयं उ ते कपोतः गर्भधिं इव सं अतसि, तत् चित् नः वचः ओहसे ॥ ४ ॥

हे राधानां पते गिर्वाहः वीर ! यस्य ते स्तोत्रं विभूतिः सूनृता अस्तु ॥ ५ ॥

हे शतक्रतो ! अस्मिन् वाजे नः ऊतये ऊर्ध्वः तिष्ठ। अन्येषु सं ब्रवावहै ॥ ६ ॥

योगेयोगे वाजेवाजे तवस्तरं इन्द्रं ऊतये, सखायः, हवाम हे ॥ ७ ॥

यदि नः हवं श्रवत् सहस्रिणीभिः ऊतिभिः वाजेभिः च उप आगमत् ॥ ८ ॥

प्रत्नस्य ओकसः तुविप्रतिं नरं अनु हुवे । यं ते पूर्वं पिता हुवे ॥ ९ ॥

हे विश्ववार पुरुहूत सखे वसो ! तं त्वा जरितृभ्यः वयं आ शास्महे ॥ १० ॥

हे सोमपाः सखे वज्रिन् ! सखीनां प्रियाणां सोमपाव्नां अस्माकं शिप्रिणीनां (गवां व्रजः अस्तु) ॥ ११ ॥

हे सोमपाः सखे वज्रिन् ! इष्ये ते यथा उश्मसि, तथा कृणु, तत् तथा अस्तु ॥ १२ ॥

द्युमन्तः याभिः मदेम, इन्द्रे सधमादे, नः रेवतीः तुविवाजाः सन्तु ॥ १३ ॥

हे धृष्णो ! त्वावान् त्मना आप्तः, स्तोतृभ्यः इयानः च, चक्रयोः अक्षं न, आ अरणोः ॥ १४ ॥

हे शतक्रतो ! यत् दुवः आ कामं जरितॄणां शचीभिः अक्षं न, आ अरणोः ॥ १५ ॥

जो सोमरस बलवान् इन्द्रके आनन्द बढानेके लिये इसके उदरमें, समुद्रमें वैसा (जल इकट्ठा होता है वैसा), इकट्ठा होता है ॥ ३ ॥

यह (सोमरस), कपोत गर्भिणी कपोतीके साथ (जैसा रहता है वैसा) तेरे लिये है, इसका तुमसे सहकार होता है। तब तुम हमारी प्रार्थनाका विचार करो ॥ ४ ॥

हे धनोंके स्वामिन् स्तुतियोग्य वीर ! यह स्तोत्र तुम्हारी विभूतिका सत्य सत्य (वर्णन करनेवाला) हो ॥ ५ ॥

हे सैंकडों कर्म करनेवाले ! इस युद्धमें हमारी सुरक्षाके लिये खडा रह। अन्य कार्यके विषयमें (पीछेसे) संभाषण करेंगे ॥ ६ ॥

प्रत्येक कर्ममें और प्रत्येक युद्धमें बलशाली इन्द्रको (हम अपनी) सुरक्षाके लिये, (उसके) मित्रोंकी तरह, बुलाते हैं ॥ ७ ॥

यदि वह हमारी पुकार सुनेंगे तो (अपनी) सहस्रों प्रकारकी सुरक्षा करनेवाले बलोंके साथ (हमारे पास निःसन्देह) आवेंगे ॥ ८ ॥

(अपने) पुरातन स्थानसे अनेक (भक्तों) के पास पहुंचनेवाले वीर (इन्द्र) को मैं बुलाता हूँ। जिस तुमको पहिले (मेरे) पिता बुला चुके थे ॥ ९ ॥

हे इस विश्वमें वरणीय श्रेष्ठ बहुतोंद्वारा प्रशंसित मित्र और धनपति (इन्द्र) ! उस तुमसे स्तोताओंका (कल्याण करनेके लिये) हम आशीर्वाद मांगते हैं ॥ १० ॥

हे सोम पीनेवाले मित्र वज्रधारी वीर ! मित्र प्रिय और सोम पीनेवाले हमारे पास उत्तम नासिकावाली (गौवोंके झुण्ड हों) ॥ ११ ॥

हे सोम पीनेवाले मित्र वज्रधारी वीर ! (हमारी) अभिलाषा (पूर्ण करने) के लिये तेरी (प्राप्तिकी हम) जिस तरह इच्छा करेंगे, वैसा करो, वह वैसाही हो ॥ १२ ॥

अन्नसे युक्त होकर (हम) जिनसे आनन्दित होंगे, वैसी इन्द्रके हमारे ऊपर प्रसन्न होनेपर, हमारे दूध देनेवाली और शक्तिसम्पन्न गायें हों ॥ १३ ॥

हे शत्रुका पराभव करनेवाले इन्द्र ! तुम्हारे समान तुमही आप्त हो, जो तुम, स्तोताओंके पास चक्रोंके अक्षकी तरह, पहुंचता है ॥ १४ ॥

हे सैंकडों प्रशस्त कर्म करनेवाले ! जो धन इच्छाके अनुसार स्तोताओंके पास, शक्तियोंसे रथका अक्ष चलानेके समान, तुम पहुंचाते हो ॥ १५ ॥

इन्द्रः शश्वत् पोप्रुथद्भिः जिगद्भिः श्वसद्भिः धनानि जिगाय । दंसनावान् सः सनिता नः सनये हिरण्यरथं अदात्॥ १६ ॥

इन्द्र हमेशा फरफराते, हिनहिनाते तथा जोरसे श्वास लेते हुए (घोडोंके द्वारा) धनोंको जीतता है। कर्मकुशल उस दाता (इन्द्र) ने हमारे उपयोगके लिये सोनेका रथ दिया है ॥ १६ ॥

हे अश्विनौ ! अश्वावत्या शवीरया इषा आ यातम्। हे दस्रा ! गोमत् हिरण्यवत् (अस्मत् गृहं अस्तु) ॥ १७ ॥

हे अश्वि देवो ! अनेक घोडोंसे युक्त शक्ति देनेवाले अन्नके साथ आओ। हे शत्रुनाशको ! हमारे घरमें गायें और सुवर्ण होवे ॥ १७ ॥

हे दस्रौ ! वां रथः समानयोजनः अमर्त्यः हि समुद्रे ईयते ॥ १८ ॥

हे शत्रुनाशको ! तुम दोनोंका एक साथ जोतनेवाला विनाश-रहित रथ है, जो समुद्रमें भी जाता है ॥ १८ ॥

अघ्न्यस्य मूर्धनि चक्रं नि येमथुः, अन्यत् परि द्याम्॥१९॥

(तुमने अपने रथका) पर्वतके शिखरके मूलमें एक चक्र रखा है और दूसरा द्युलोकमें रखा है ॥ १९ ॥

हे कवप्रिये अमर्त्ये विभावरि उषः ! भुजे मर्तः कः ? कं नक्षसे ? ॥ २० ॥

हे स्तुतिप्रिय अमर शोभावाली उषा देवी ! तुम्हें भोजन देनेवाला मानव कौन है ? किसे तुम प्राप्त होना चाहती है ॥ २० ॥

हे अश्व्ये चित्रे अरुषि ! आ अन्तात् आ पराकात् वयं ते न मनामहि ॥ २१ ॥

हे अश्वयुक्त विचित्र प्रकाशवाली उषा देवी ! दूरसे या पास से हम तुम्हें नहीं जान सकते ॥ २१ ॥

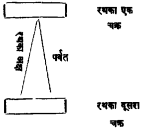
हे दिवः दुहितः ! स्येभिः वाजेभिः त्वं आ गहि, अस्मे रयिं नि धारय ॥ २२ ॥

हे द्युलोककी पुत्री ! उन बलोंके साथ तुम आओ, और हमें धन प्रदान करो ॥ २२ ॥

अश्विदेवोंका रथ

इस सूक्तके मंत्र १७-१९ तकके तीन मंत्रोंमें अश्विदेवोंके रथका वर्णन है। यह रथ दोनों अश्विनीकुमारोंके लिये (समान-योजनः) एकही समय जोडा जाता है। अर्थात् रथ सिद्ध होते ही दोनों अश्विदेव उसमें इकट्ठे ही बैठते हैं। यह रथ (समुद्रे ईयते) समुद्रमें भी जाता है। भूमिपर तो जाताही है और यह (अमर्त्यः) अमर होनेसे आकाशमें भी भ्रमण करता है, अर्थात् जल, स्थल और आकाशमें इनका रथ जाता है। एकही वाहन विमान जैसा आकाशमें जाय, रथ जैसा भूमिपर भी चले और नौकाके समान समुद्रमें भी जाय, यह निःसन्देह उत्तम कारीगरीसे बनाया रथ होगा।

इस रथका एक चक्र (अन्यत् परि द्यां) आकाशमें संचार करता है और दूसरा (अघ्न्यस्य मूर्धनि) पर्वत की मूर्धामें घूमता है। यहां मूर्धा पदका अर्थ मूल या जड ऐसा किया जाय तो यह वर्णन उत्तरीय ध्रुवके पासका वर्णन बनेगा। अश्विदेवोंका यह द्विचक्र रथ है।



ऐसा रथ घूम रहा है। ऐसी कल्पना की जाय तो यह कल्पना उत्तरीय ध्रुवके पास ही दीख सकती है। यहां इस भरतभूमीमें ग्रहतारा और नक्षत्र पूर्वसे उदय होकर आकाश मध्यतक ऊपर चढते हैं और पश्चात् पश्चिममें अस्त होते हैं। उत्तरीय ध्रुवमें ये सब ग्रहतारा और नक्षत्र प्रदक्षिण गतिसे पर्वतके इर्दगिर्द घूमनेके समान चक्र गतिसे घूमते हैं अर्थात् देखनेवालेको प्रदक्षिणा करते हैं। अतः यहां रथचक्रकी उक्त गति और पर्वतको अक्ष कहना सार्थ हो सकता है।

यहां अडचन एकही है वह ' मूर्धा ' पदकी है। मूर्धाका अर्थ ' मूल, जड ' ऐसा करनेपर ही उक्त बातकी सिद्धि

होती है। पर मूर्धाका अर्थ मस्तक या शिखर है। यह अर्थ लेनेपर पर्वत शिखरपर् एक चक्र और द्युलोकमें दूसरा चक्र घूमता है ऐसा अर्थ होगा (ऐसा अर्थ लेनेपर भी यह चक्रवत् भ्रमण उत्तरीय ध्रुवके स्थानपरही दीखनेवाला होगा। किसी अन्य स्थानपर द्युलोक सिरपर चक्रवत् भ्रमण करनेवाला दीखता नहीं है, उत्तरीय ध्रुवपरही यह संभवनीय है।

आदर्श पुरुष

इस सूक्तने निम्नलिखित आदर्श गुणोंसे युक्त पुरुष पाठकोंके सामने रखा है—

१ शतक्रतुः— सैंकडों पराक्रम करनेहारा,

२ मंहिष्ठः— महान्, प्रभावी, (मं. १)

३ शुष्मी— सामर्थ्यवान्, (मं. ३)

४ राधानां पतिः— धनोंका स्वामी, सिद्धियोंका स्वामी (मं. ५)

५ सहस्रिणीभिः ऊतिभिः वाजेभिः आ गमत्— सहस्रों प्रकारके संरक्षक बलोंके साथ हमारे पास आता है, (मं. ८)

६ नरः— नेता, (मं. ९)

७ विश्ववारः— विश्वमें श्रेष्ठ, (मं. १०)

८ धृष्णुः— शत्रुपर विजय पानेवाला, (मं. १४)

शेष विशेषण पहिले कईवार आगये हैं। इस तरहके गुणधर्मोंसे युक्त वीर आदर्श करके इस सूक्तने पाठकोंके सामने रखा है।

इस सूक्तके अन्य उपदेश स्पष्ट हैं इसलिये उनकी विशेष चर्चा करनेकी कोई आवश्यकता नहीं है।

नवम मंत्रमें कहा है कि 'मेरे पिता तुम्हें बुला चुके थे, अतः मैं भी तुम्हें बुला रहा हूं।' यदि यह अर्थ ठीक होगा, तो इस सूक्तकी रचनाका संबंध शुनःशेपके पासही पहुंचता है।

(नवमं मण्डलं)

(८) सोमरस

(ऋ. ९।३) आजीगर्तिः शुनःशेपः, स कृत्रिमो वैश्वामित्रो देवरातः। पवमानः सोमः। गायत्री।

एष देवो अमर्त्यः पर्णवीरिव दीयति । अभि द्रोणान्यासदम् १
एष देवो विपा कृतोऽति ह्वरांसि धावति । पवमानो अदाभ्यः २
एष देवो विपन्युभिः पवमान ऋतायुभिः । हरिर्वाजाय मृज्यते ३
एष विश्वानि वार्या शूरो यन्निव सत्वभिः । पवमानः सिषासति ४
एष देवो रथर्यति पवमानो दशस्यति । आविष्कृणोति वग्वनुम् ५
एष विप्रैरभिष्टुतोऽपो देवो वि गाहते । दधद्रत्नानि दाशुषे ६
एष दिवं वि धावति तिरो रजांसि धारया । पवमानः कनिक्रदत् ७
एष दिवं व्यासरत् तिरो रजांस्यस्पृतः । पवमानः स्वध्वरः ८
एष प्रत्नेन जन्मना देवो देवेभ्यः सुतः । हरिः पवित्रे अर्षति ९
एष उ स्य पुरुव्रतो जज्ञानो जनयन्निषः । धारया पवते सुतः १०

अन्वयः— एषः अमर्त्यः देवः द्रोणानि अभि आसदं, पर्णवीः इव, दीयति ॥ १ ॥

एष देवः विपा कृतः, पवमानः, अदाभ्यः ह्वरन् ह्वरांसि अति धावति ॥ २ ॥

अर्थ— यह अमर (सोम) देव कलशोंमें बैठनेके लिये पक्षीके समान, आते हैं ॥ १ ॥

यह (सोम) देव अङ्गुलियोंसे (निचोडा) जाकर, छानेके पश्चात्, न दबता हुआ आगे बढकर, कुटिल शत्रुओंपर (हमला करनेके समान) दौडता है ॥ २ ॥

एषः देवः पवमानः विपन्युभिः ऋतायुभिः हरिः वाजाय मृज्यते ॥ ३ ॥

यह (सोम) देव छाना जानेके बाद ज्ञानी और यज्ञके लिये जिनकी आयु लगी है ऐसे लोगोंके साथ घोडेके समान युद्ध करनेके लिये सिद्ध किया जाता है ॥ ३ ॥

एषः पवमानः शूरः विश्वानि वार्या सत्वभिः यन् इव सिषासति ॥ ४ ॥

यह छाना जानेवाला शूर (सोमरस) सब धनोंको, अपने सामर्थ्योंके साथ आगे बढता हुआ, बांटनेकी इच्छा करता है ॥ ४ ॥

एषः पवमानः देवः रथर्यति, दशस्यति, वग्वनुं आविष्कृणोति ॥ ५ ॥

यह छाना गया सोमदेव रथकी तरह आगे बढता है, इष्ट वस्तुको देता है और आशीर्वाद देता है ॥ ५ ॥

विप्रैः अभिष्टुतः एष देवः दाशुषे रत्नानि दधत् अपः वि गाहते ॥ ६ ॥

ब्राह्मणोंद्वारा प्रशंसित यह सोम देव दाताको अनेक रत्न देता हुआ जलमें गोते लगाता है ॥ ६ ॥

धारया पवमानः एषः कनिक्रदत्, रजांसि तिरः दिवं वि धावति ॥ ७ ॥

धारासे छाना जानेवाला यह (सोम) शब्द करता हुआ, अन्तरिक्षके स्थानोंको लांघकर द्युलोकमें दौडता है ॥ ७ ॥

एषः पवमानः स्वध्वरः, अस्पृतः, रजांसि तिरः, दिवं वि आ असरत् ॥ ८ ॥

यह छाना हुआ (सोमरस) उत्तम अकुटिल यज्ञ करता हुआ, पराभूत न होकर, अन्तरिक्षके लोकोंको लांघकर, द्युलोकपर चढता है ॥ ८ ॥

एषः हरिः देवः प्रत्नेन जन्मना देवेभ्यः सुतः पवित्रे अर्षति ॥ ९ ॥

यह हरे वर्णका दिव्य (सोम) पुरातन विधिसे देवोंके लिये निचोडा जाकर छाननीके ऊपर चढता है ॥ ९ ॥

स्यः एषः उ पुरुव्रतः, जज्ञानः, इषः जनयन् सुतः धारया पवते ॥ १० ॥

यह वह अनेक कर्मोंको करनेवाला, ज्ञान बढानेवाला, अन्न देनेवाला, सोमरस धारासे छाना जाता है ॥ १० ॥

सोमरस

यह सूक्त सोमरसके प्रकरणोंके साथ पढा जाना योग्य है। यह सोमरस (द्रोणानि) पात्रोंमें भरा जाता है (मं. १), यह (क्षिपा कृतः) अंगुलियोंसे निचोडा जाता है (मं. २), (हरिः) यह हरे रंगका सोम है, वह घोडेके समान बारबार (मृज्यते) धोया जाता है (मं. ३), यह (पवमानः) छाना जाता है, शुद्ध किया जाता है (मं. ४), यह (वि गाहते) जलमें बारबार शुद्ध किया जाता है (मं. ६), यह धारासे नीचे छाननीसे उतरता है (मं. ७), यह छाना जानेके लिये (पवित्रे अर्षति) छाननीपर चढता है (मं. ९), इस तरह सोमरस तैयार करनेकी रीति इस सूक्तके वर्णनमें दीखता है। यह शूर पुरुषोंका उत्साह बढाता है, इसलिये निम्नलिखित विशेषण उसके लिये सार्थ हो सकते हैं।

वीर सोम

सोमरस वीरताको उत्साहित करता है, सोम पीनेके पश्चात् बडा उत्साह बढता है और शौर्यके कार्य वीर लोग करते हैं देखिये-

१ अदाभ्यः-- न दब जानेवाला वीर (मं. २)

२ ह्रुतांसि अति धावति-- कुटिल शत्रुओंको परास्त करके आगे बढता है, (मं. २)

३ विपन्युभिः ऋतायुभिः वाजाय मृज्यते-- विशेष पराक्रमके कर्म करनेवाले सत्यके लिये ही जिनकी आयु लगती है, ऐसे वीर बल बढानेके लिये इसे शुद्ध करते हैं। (मं. ३)

४ शूरः वार्या सत्वभिः यन्-- यह शूर उत्तम धनोंको अपने बलोंसे प्राप्त करता है। (४)

५ रथर्यति-- रथसे हमला करता है, (५)

६ दाशुषे रत्नानि दधत्-- दाताको रत्न देता है, (६)

७ स्वध्वरः-- उत्तम कुटिलतारहित कर्म करता है (७)

८ अस्पृतः-- कभी पराभूत नहीं होता, (८)

९ पुरुव्रतः-- अनेक कर्मोंको करता है, (१०)

१० जज्ञानः-- ज्ञानी है।

इस तरह इसके वीर होनेका, वीरत्व गुणको उत्तेजित करनेका वर्णन इस सूक्तमें है। पाठक इसका मनन करें।

(९)

शुनःशेप ऋषिके अथर्ववेदमें आये मंत्र

(अथर्व. ६।२५।१-३) गण्डमाला विनाशन

पञ्च च याः पञ्चाशच्च संयन्ति मन्या अभि । इतस्ताः सर्वा नश्यन्तु वाका अपचितामिव ॥१॥
सप्त च याः सप्ततिश्च संयन्ति ग्रैव्या अभि । इतस्ताः सर्वा नश्यन्तु वाका अपचितामिव ॥२॥
नव च या नवतिश्च संयन्ति स्कन्ध्या अभि । इतस्ताः सर्वा नश्यन्तु वाका अपचितामिव ॥३॥

अर्थ— जो पांच और पचास पीडाएं (मन्या अभि संयन्ति) गलेके चारों ओर मिलकर होती हैं० ॥ १ ॥ जो सात और सत्तर पीडाएं (ग्रैव्या अभि संयन्ति) कण्ठके भागमें मिलकर होती हैं ॥ २ ॥ जो नौ और नव्वे पीडाएं स्कंधदेशमें साथ साथ होतीं हैं, (ताः) वह सब (नश्यन्तु) नष्ट हों, दूर हों, (अपचितां वाका इव) अपरिपक्व मनुष्योंके भाषण जैसेविनष्ट होते हैं, अथवा कृमियोंके शब्द जैसे क्षणभरमें विनष्ट होते हैं अथवा गण्डमाला की बाधा जैसी दूर होती है ॥ ३ ॥

'अपचित' का अर्थ 'अपरिपक्व, अनाडी, कृमि जो शरीरमें काटनेसे सूजन होती है और गण्डमाला' है। यहां गला, गर्दन कण्ठभाग और स्कंधदेशमें होनेवाले फोडे फुन्सी आदिके दूर करनेकी प्रार्थना है। विशेष कर गण्डमालाके दूर करनेका विषय मुख्य है। गण्डमाला दूर करनेके लिये इसका पाठ किया करते हैं। ऋषि इस सूक्तमें रोग दूर करनेकी प्रार्थना करता है। यूपसे शुनःशेपके बन्धन ढीले करनेकी बात यहां नहीं है।

(१०)

(अथर्व. ७।८३।१-४)

अप्सु ते राजन् वरुण गृहो हिरण्ययो मिथः। ततो धृतव्रतो राजा सर्वा धामानि मुञ्चतु ॥१॥
धाम्नोधाम्नो राजन्नितो वरुण मुञ्च नः। यदापो अघ्न्या इति वरुणेति यदूचिम ततो वरुण मुञ्च ॥२॥ उदुत्तमं वरुण० ॥३॥ (ऋ. १।२४।१५)
प्रास्मत् पाशान् वरुण मुञ्च सर्वान् य उत्तमा अधमा वारुणा ये।
दुष्वप्न्यं दुरितं नि ष्वास्मदथ गच्छेम सुकृतस्य लोकम् ॥४॥

अर्थ--हे वरुण राजन् ! (ते हिरण्ययः गृहः अप्सु) तुम्हारा सुवर्णमय घर जलोंमें बनाया है। वहांसे नियमोंका धारण करनेवाला राजा सब धामोंको मुक्त करे ॥१॥

हे राजा वरुण ! प्रत्येक स्थानसे तथा इससे (नः मुञ्च) हम सबको मुक्त करो। ' हे अवध्य जलो ! हे वरुण ! ' ऐसी (यत् ऊचिम) जो हमने आपकी प्रार्थना की, इससे, हे वरुण ! (नः मुञ्च) हम सबको मुक्त करो ॥२॥

(उदुत्तमं० का अर्थ ऋ. १।२४।१५ स्थानपर, इस पुस्तकके प्रथम सूक्तमें पृ० ९ देखो) ॥३॥

हे वरुण ! (अस्मत् सर्वान् पाशान् प्र मुञ्च) हम सबसे सब पाशोंको दूर करो। (ये उत्तमाः अधमाः ये वारुणाः) जो उत्तम, अधम, और जो वरुणसंबंधी पाश हैं वे दूर हों, तथा (दुःष्वप्न्य) दुष्ट स्वप्न और (दुरितं) पाप (अस्मत् निःष्व) हमसे दूर हो। (सुकृतस्य लोकं गच्छेम) और हम निर्दोष होकर पुण्यलोकको पहुंचेंगे ॥४॥

इस सूक्तमें (१) सर्वा धामानि मुञ्चतु--सब धामोंको मुक्त करो, (२) धाम्नोधाम्नो नः मुञ्च-- प्रत्येक धामसे हमें मुक्त करो, (३) यत् ऊचिम--जो हम प्रार्थना कर चुके, (४) अस्मत् सर्वान् पाशान् प्र मुञ्च--हम सबसे सब पाशोंको दूर करो, (५) सुकृतस्य लोकं गच्छेम--पुण्यलोक को हम सब प्राप्त होंगे। इन मंत्रोंमें बहुतोंके मुक्त होनेकी ही बात है। हम सब अलग अलग (धाम्नोधाम्नः) स्थानोंमें रहते हैं, पृथक् पृथक् (धामानि) घरोंमें रहते हैं, इकट्ठे होकर (ऊचिम) प्रार्थना करते हैं, हम सबको सब प्रकारके (सर्वान् पाशान् अस्मत् प्रमुञ्च) पाशोंसे पृथक् करो जिससे हम सब पुण्यलोकको प्राप्त होंगे। ये सब मंत्र सामुदायिक उपासनाका महत्त्व बता रहे हैं। सब लोग मिलकर प्रार्थना करें और सब मिलकर मुक्त हों। यह सामुदायिक मुक्ति है। सबका सब समाज उच्च आचार-विचारसे परिशुद्ध होता हुआ मुक्त हो सकता है। यह विचार विशेषतया यहां बताया है।

उत्तम अधम पाशोंका स्वरूप तो पहिले बताया जा चुका है। यहां मध्यम पाशोंको 'वारुण' कहा है, यह विशेष है। इस सूक्तमें दुष्ट स्वप्न और पाप दूर होनेकी बात विशेष है। पुण्य-लोकमें पहुंचनेकी बात भी मननीय है। यदि शुनःशेप यूपसे ही अपना छुटकारा चाहनेवाला माना जाय, तो दुष्ट स्वप्नसे और पापसे दूर होकर पुण्यलोकको प्राप्त होनेकी जो बात है, वह यूपसे छुटकारा पानेके साथ संबंध नहीं रख सकती। इसलिये शुनःशेपकी जो कथा ऐतरेय ब्राह्मणमें लिखी है वह विश्वास रखने योग्य प्रतीत नहीं होती और शुनःशेप ऋषिके सूक्तोंमें जो 'बन्धनसे निवृत्ति' का विचार है वह सर्व साधारण मानवोंके बंधनोंसे मुक्तता काही विचार है इसमें संदेह नहीं है।

(११)

ऐतरेय ब्राह्मणमें शुनःशेपकी कथा

ऐतरेय ब्राह्मणमें जो शुनःशेपकी कथा लिखी है वह निम्नलिखित स्थानमें दी है, साथ अनुवाद भी दिया है—

मूल कथा	अनुवाद
१ हरिश्चन्द्रो ह वैधस ऐक्ष्वाकोऽपुत्र आस। तस्य ह शतं जाया बभूवुः। तासु पुत्रं न लेभे। तस्य ह पर्वत नारदौ गृह ऊषतुः। स ह नारदं पप्रच्छ... किं स्वित्पुत्रेण विन्दते तन्म आ चक्ष्व नारदेति।	१ हरिश्चन्द्र राजा इक्ष्वाकुवंशमें उत्पन्न हुए वेधस राजाका पुत्र था, वह पुत्रहीन था। उसकी सौ स्त्रियां थीं। पर उसे एक भी स्त्रीसे पुत्र न हुआ। उसके घरमें पर्वत और नारद ये दो ऋषि आकर रहे थे। उस राजाने नारदसे पूछा कि पुत्र प्राप्तिसे क्या लाभ होते हैं वे मुझे कहो।
२ पतिर्जायां प्रविशति गर्भो भूत्वा स मातरम्। तस्यां पुनर्नवो भूत्वा दशमे मासि जायते। तज्जाया जाया भवति यदस्यां जायते पुनः।	२ पति वीर्यरूपसे धर्मपत्नीमें प्रविष्ट होता है। वहां नया होकर दसवें महिनेमें जन्म लेता है। इसलिये स्त्रीका नाम 'जाया' है।
३ देवाश्चैतामृषयश्च तेजः समभरन्महत्। देवा मनुष्यानब्रुवन् एषा वो जननी पुनः॥	३ देवों और ऋषियोंने इस स्त्रीमें बडाभारी तेज भर रखा है। देवोंने मानवोंसे कहा कि यह (धर्मपत्नी) तुम्हारी ही फिर जननी (माता) हुई है। (क्योंकि पिता-ही स्त्रीके पेटसे पुत्ररूपमें जन्मता है।)
३ नापुत्रस्य लोकोऽस्ति	३ पुत्रहीनके लिये उच्च गति नहीं है।
४ अथैनमुवाच वरुणं राजानमुप धाव, पुत्रो मे जायतां, तेन त्वा यजेति, तथेति।	४ अब उस ऋषिने उस राजासे कहा कि वरुणकी उपासना करो, पुत्र होनेपर उससे तेरा यजन करूंगा ऐसा कहो। ठीक है ऐसा उसने कहा।

५ तस्य पुत्रो जज्ञे, रोहितो नाम तं होवाचा,ऽजनि वै पुत्रो, यजस्व माऽनेनेति ।

६ स होवाच. निर्दशोऽन्वस्त्वथ त्वा यजा इति, तथेति ।

७ निर्दशो न्वभूद्यजस्व मानेनेति। स होवाच… दन्ता न्वस्य जायन्तां, अथ त्वा यजा इति, तथेति।

८ तस्य दन्ताः पुनर्जज्ञिरे, तं होवाचाक्रत वा अस्य पुनर्दन्ता, यजस्व मानेनेति, स होवाच, यदा वै क्षत्रियः सान्नाहुको भवति, अथ स मेध्यो भवति, … अथ त्वा यजा इति।

९ स सन्नाहं प्रापत्तं होवाच, सन्नाहं नु प्राप्नोद्यजस्व माऽनेनेति । स तथेत्युक्त्वा पुत्रमामन्त्रयामास, ततायं वै मह्यं त्वामददाद्धन्त त्वयाऽहमिमं यजा इति। स ह नेत्युक्त्वा धनुरादायारण्यमुपातस्थौ, स संवत्सरमरण्ये चचार।

१० अथ हैक्ष्वाकं वरुणो जग्राह, तस्य होदरं जज्ञे, तदु ह रोहितः शुश्राव, सोऽरण्याद्ग्राममेयाय, तमिन्द्रः उवाच । नानाश्रान्ताय श्रीरस्तीति… चरैवेति।

११ सोऽजीगर्तं सौयवसिं ऋषिं अशनया परीतमरण्य उपेयाय। तस्य ह त्रयः पुत्रा आसुः ।… मध्यमे शुनःशेपे तस्य ह शतं दत्वा, स तमादाय सोऽरण्याद्ग्राममेयाय स पितरमेत्योवाच तत हन्ताहमनेनात्मानं निष्क्रीणा इति। स वरुणं राजानमुपससारानेन त्वा यजा इति। तथेति भूयान्वै ब्राह्मणः क्षत्रियादिति।

१२ सौयवसिर्मह्यमपरं शतं दत्त, हममेनं विशसिष्यामि। … मह्यमपरं शतं दत्वाहमेनं विशसिष्यामि।… शुनःशेप ईक्षां चक्रेऽमानुषमिव वै मा विशसिष्यन्ति हन्ताहं देवता उपधावामीति। ‘ कस्य नूनं ’ इ०।

५ उसे पुत्र हुआ, उसका नाम रोहित था, तब वरुणने राजासे कहा, कि पुत्र हुआ, अब उससे मेरा यजन करो।

६ राजाने कहा हे देव ! अभी तो इस बालकको दस दिन भी नहीं हुए, उतने तो होने दो। बाद यजन करेंगे। ठीक है ऐसा वरुणने कहा।

७ दस दिन हो गये हैं अब इससे मेरा यजन करो ऐसा वरुणने कहा, तब राजाने कहा कि इसे दांत तो आने दो, पश्चात् यज्ञ करेंगे। ठीक ऐसा उसने कहा।

८ उस पुत्रके (पहिले दांत आये, गिरे, पश्चात्) दूसरे दांत आये, तब वरुणने यज्ञ करनेके लिये कहा, तब राजाने कहा कि जब क्षत्रिय कवच धारण करने लगता है तब पवित्र होता है, तब यज्ञ करेंगे।

९ जब वह पुत्र कवच धारण करने लगा तब वरुणने कहा कि अब यज्ञ करो। तब उसने अपने पुत्रको बुलाया और कहा कि हे पुत्र ! इस वरुणकी कृपासे तुम्हारा जन्म हुआ है, इसलिये इसके लिये तेरा यजन करना है। पुत्रने ‘ नहीं ’ करके कहा और धनुष्य लेकर वनमें चला गया और वहां एक वर्षतक घूमता रहा ॥

१० तब हरिश्चन्द्रको वरुणने उदर रोग किया, यह सुनकर रोहित अरण्यसे घर आया, तब इन्द्रने उसे कहा कि विनाथके ऐश्वर्य नहीं मिलता,… इसलिये घूमते रहो (वह छः वर्ष अरण्यमें रहा।)

११ वह राजपुत्र सूयवसका पुत्र अजीगर्त ऋषि भूखसे दुःखी है ऐसा देखकर उसके पास गया। उसके तीन पुत्र थे। …बीचके शुनःशेपको १०० गायें देकर खरीद किया। उसे लेकर वह वनसे घर आया और पितासे कहा कि यह ब्राह्मणपुत्र खरीद कर लाया है, वह राजा वरुणके पास जाकर बोला कि इससे तेरा यजन करेंगे। ठीक है ऐसा वरुणने कहा और कहा कि क्षत्रियसे ब्राह्मण अच्छा ही रहता है।

१२ अजीगर्तने कहा कि यदि मुझे और १०० गायें दोगे तो मैं इसको यूपके साथ बांधूंगा। …और १०० गायें दोगे तो मैं इसका हनन करूंगा। शुनःशेपने देखा कि ये पशुके समान मेरा यहां वध ही कर रहे हैं, अतः मैं देवताकी ही उपासना करूंगा। ‘ कस्य नूनं ’ ये उसके उपासनाके मंत्र हैं।

इस तरह प्रार्थना करते करते शुनःशेपके बंधे पाश खुल गये और उसके पिता भी उदर रोगसे मुक्त हुए। देवोंके प्रसादसे शुनःशेप बच गया, इसलिये इसका नाम 'देवरात' रखा गया। वहां उस यज्ञमें इकट्ठे हुए ऋषि विचार करने लगे कि अब यह किसका पुत्र होगा ? तब शुनःशेप विश्वामित्रकी गोदमें आ बैठा, तब अजीगर्त ऋषि कहने लगा कि 'यह मेरा पुत्र है'

विश्वामित्र- नहीं, देवोंने यह मुझे दिया है इसलिये यह मेरा पुत्र है।

अजीगर्त- (अपने पुत्रसे) हे प्रिय पुत्र ! तू अब मेरे साथ अपने घर चल, तेरी माता तेरा स्वागत करेगी।

शुनःशेप- हे अजीगर्त ! हे पिता ! अबतक तो तुमने ३००गायें लेकर मेरे गलेपर छुरी चलानेका कार्य किया और अब मुझे बुलाते हो। देवताओंकी दयासे मैं जीवित रहा, इसलिये अब मैं तेरेपास नहीं आऊंगा।

ऐसा कहकर शुनःशेपने अंगिरस गोत्रका त्याग करके विश्वामित्र गोत्रका स्वीकार किया। विश्वामित्रने उसका स्वीकार किया। विश्वामित्रके १०० पुत्र थे। पहिले ५० पुत्रोंने इसे अपना भाई माननेसे इन्कार किया। तब विश्वामित्रने उन्हे शाप दिया। (तानन्ु व्याजहारान्तान्वः प्रजा भक्षीष्टेति त एतेऽन्ध्राः पुण्ड्राः शबराः पुलिन्दा मूतिबा इत्युदन्त्या बहवो भवन्ति वैश्वामित्रा दस्यूनां भूयिष्ठाः) कि जो तुम मेरी आज्ञा नहीं मानते वे तुम नीच दस्यु बनोगे। वे ही ये आन्ध्र पुलिंद, शबर आदि हैं। ये सब दस्यु वे ही विश्वामित्र पुत्र शापसे भ्रष्ट हुए है।

मधुच्छन्दा आदि विश्वामित्र पुत्रोंने शुनःशेपको अपना बडा भाई मान लिया और पिताकी आज्ञा मान ली। इसलिये मधुच्छन्दा आदि ऋषि बने। यह कथा ऐ. ब्रा. ७।३।१३-१८ में है।

इस कथाका विचार भूमिकामें हुआ है।

शुनःशेप ऋषिका दर्शनकी

विषयसूची

विषयसूची

भारतके हिन्दु सम्राट्

प्रास्ताविक

स्वतंत्र राज्योंकी स्थापना

'भारत के हिन्दु सम्राट्' ये शब्द, आश्चर्य नहीं कि, कुछ लोगोंको विचित्रसे मालूम होंगे; क्योंकि, भारतपर आज अंग्रेजोंका 'यूनियन जॅक' गड़ा हुआ है और इसके पहले कई सदियोंतक मुस्लीम बादशाहोंका 'चाँद' चमक रहा था। अर्थात् हिन्दुसम्राटोंकी हस्ती तथा पौरुषकी कहाँतक गुँजाइश हो सकती है? यह प्रश्न पैदा होना असम्भव नहीं है। किन्तु हिन्दुस्थानके इतिहासका ठीक ठीक परिशीलन करनेपर ज्ञात होगा कि मुस्लीम बादशाहोंके कार्यकालके पूर्व कई प्रतापी हिन्दुसम्राटोंने पीढी दरपीढी सार्वभौमत्व और अतोल वैभवका उपभोग किया था। यहाँतक कि इस्लामका सितारा जब बुलन्द था तब भी कई हिन्दुवीरोंने स्वतंत्र राज्योंकी स्थापना की थी और शासन भी किया था। उनका पौरुषही भारतवर्षके जागरण तथा पुनरुत्थानकी क्षमताका परिचायक है। इसलिये इसतरहके बनाव-बिगाड़का इतिहास जिनके जीवनमें घट गया ऐसे कुछ प्रसिद्ध 'हिन्दु सम्राटों-की उद्बोधक जीवनियाँ' संक्षिप्तरूपसे दे रहे हैं।

उज्वल इतिहास

सभी सभ्य देशोंमें अपने प्रतापी पुरखाओंका उज्वल इतिहास ठीक तरहसे लिखकर आनेवाली पीढीके सामने उनका आदर्श रखा जाता है; किन्तु एक हमारा देश है जो सब दुनियासे न्यारा है। विदेशी तथा कुछ देशी इतिहासज्ञ हमारा इतिहास इसतरह पेश करते आये हैं कि ऐसे इतिहासको जाननेकी अपेक्षा इसके बारेमें पूरा अज्ञानही लाभदायी होगा। क्योंकि ऐसे अर्ध-सत्य इतिहाससे निकलनेवाले तर्क तथा सिद्धान्त तो अनर्थकारी होते हैं। कुछ बानगियाँ लीजिये। कुछ कहते हैं हिन्दूओंको (यानें इस देशके अत्यधिक-संख्य निवासियोंको) 'राष्ट्रीयत्व' (नॅशनॅलिटी) किस चिड़ियाका नाम है यह भी मालूम न था। हमारे देशमें आज जिस 'देशाभिमान' (पॅट्रिऑटिझम) का हम अनुभव करते हैं वह तो अंग्रेजी शिक्षा तथा पश्चिमी देशों और अमरीकासे संबंध आ जानेका परिणाम है। कोई कहता है, हिन्दुओंके राज्य तो सर्वेसर्वाओंका राज जिसमें प्रजा तो निरीह जानवरोंके समान! इसतरह कई आक्षेप हिन्दुस्थान देश तथा हिन्दुजातिपर किये जाते हैं। इसका एकमात्र कारण है हमारे इतिहास-लेखनकी सदोषता। हमारे इस विचार-की पुष्टीमें हम कुछ उदाहरण पेश करते हैं—

सरल और सच्ची बातें

हिंदी विद्यार्थियोंके सामने उनके देशके बारेमें कुछ सरल और सच्ची बातें रखनेका हेतु अपनी भूमिकामें बतानेवाले एक विद्वान् 'अनूदित' ग्रंथमें लिखते हैं—

क्या यह ठीक है?

'हिंदुस्थान देशकी रक्षाके काममें आर्योंकी सभ्यता तथा वीरता किसी कामकी नहीं है...मुसलमानी हमलोंसे कमसे कम इतना तो अच्छा हुआ कि हिंदी लोगोंमें अच्छे लड़कोंका बढ़ावा हो गया...ब्रिटिश कार्यकालमें ठंडी आबोहवाके गोरे सिपाहियोंकी कीमती संख्या हिंदी सेनामें बढ़ रही है। उसीतरह ब्रिटिश सागर शक्तिकी सहायतासे विदेशी हमलोंसे अपनी रक्षा करनेकी सामर्थ्य अब हिंदुस्थानमें आ चुकी है। इसतरहका गर्व आजतक किसी समय भारत नहीं कर सकता था।...'

केन्द्रिय सत्ता

उपर्युक्त लेखसे विद्यार्थियोंके मनपर क्या असर होता होगा? यही कि हम हिन्दु दुर्बल हैं और इसीसे हमारी रक्षाके लिये हमेशा किसी परायेकी आवश्यकता है। मतलब, साफ शब्दोंमें कहा जाय तो 'हिंदुजाति' संसार-

के अन्ततक पराधीन रहनेकीही योग्यता रखती है। खैर। हर कोई विचारशील सज्जन मान्य करेगा कि ब्रिटिश बेडेकी सहायतासे अपने सागरी तटोंकी रक्षा करानेमें भारत जैसे महान् राष्ट्र तथा विद्यमान शासकोंके लिये गर्वकी बात कभी नहीं हो सकती। तो फिर इसमें अभिमानकी बात क्या हो सकती है? इसीतरह मुसलमान कज़ाकोंकी संख्या भर आनेसे भी दिल्लीकी केंद्रिय सत्ता भारतपर उत्तर-पश्चिमसे चढाई करनेवाले हमलाखोरोंको रोकनेमें कहाँतक सफल हुई? भारतके अमर्याद सागरतटकी रक्षा अपने बूतेपर करनेकी सावधानी तथा राजनैतिक क्षमताका परिचय बहामनी सुलतानों, बीजापूरके बादशाहों या आलमगीर कहलानेवाले मोगल बादशाहोंने कहाँतक दिखायी? इस बारेमें यदि कोई किसी हदतक सफलताका दावा कर सकता हो तो वह है रणजीत सिंह, हरि सिंह या शिवाजी-बाजीराव जैसे हिंदु प्रतापी वीर!

अगस्ति और रामचन्द्र

खैर! इतिहास लेखनके इस ढंगका और एकही उदाहरण, विस्तारभयसे, पेश करता हूँ। प्राथमिक पाठशालाओं बच्चोंको अपने अपने प्रांतोंका इतिहास सबसे पहले सिखाया जाता है। इस हेतु लिखे हुए एक चालू पुस्तकमें पहलेही पाठमें अगस्तिमुनि तथा श्रीरामचंद्र जैसे आर्य लोग दक्षिणके दण्डकारण्यमें आकर थोडी साफसफाई कर बस्ती बसाने लगते हैं तभी दूसरेही पाठमें एकाएक 'अल्लाउद्दीन खिलजीका हमला और देवगिरीके यादवोंका शरण आनेकी बात पढते हैं। बीचमें शालिवाहन या चालुक्य-राष्ट्रकूट जैसे सुवर्ण युग राजवंशोंकी पूछताछ तक नहीं होती! मानों रामचंद्रके बाद हिन्दु लोगोंमें कोई 'राम' न रहा हो! इस पाठ्यपुस्तककी समाप्तिमें ग्रंथकारने बाजीराव द्वितीय की अक्षमताका वर्णन चुने हुए शब्दोंमें काफी रंगा दिया हुआ है। किन्तु खड्डा-कोरेगांवकी लडाइयों तथा सेनापति बापू गोखलेकी अद्वितीय वीरता एवं आत्मबलिदानका जिकर तक उसमें नहीं मिलता।

पराजयके वर्णन!

पराजयके वर्णनमें भी देशकी आनके लिये लडनेवाले वीरोंके बारेमें पाठकोंके हिरदयमें सहानुकंपा तथा आदर और स्वदेशके बारेमें लगन कुशल लेखक पैदा कर सकता है; जर्मनीके विद्वानोंका उदाहरण इसका सबूत है। प्रांतीय इतिहासके ज्ञानके बाद विद्यार्थियोंको हिंदुस्थानका इतिहास पढाया जाता है। उसमें पठान-मुगलोंकी भिडनों, अंग्रेज, फ्रेंच आदि गोरोंकी कशमकशों और अंग्रेज गवर्नर या वाइसरायके कार्यकाल आदि विषयोंको छोड चंद्रगुप्त, अशोक या हर्ष आदि प्राचीन 'हिन्दु-सम्राटों' का जिक्र करनेको किसे फुरसद है? यही नहीं; अभी अभी के 'विजय नगर' के 'हिंदु साम्राज्य' के बारेमें भी विद्यार्थि क्या जानते हैं? तोफिर 'प्रवासी भारत' में विकसित हमारी विद्या तथा कलाओंकी तथा जावा, बली, सुमात्रा आदि द्वीपांतरोंकी प्राचीन हिन्दु बस्तियोंकी पहचान कहाँसे हो सकती है? आगे चलकर इन विद्यार्थियोंसे जो भारतकी महाविद्यालयकी शिक्षा प्राप्त करते हैं वे इग्लैंद, ग्रीस, जापान आदि देशों की कहिये कि- तथा दुनियाके इतिहाससे परिचित होनेका मौका मिलता है; किन्तु अपने स्वदेशके बारेमें ऐतिहासिक ज्ञानमें-कुछ जिज्ञासु विद्यार्थियोंको छोड-कोई खास बढावा नहीं होता ऐसा कहनेमें कोई साहस नहीं है।

राष्ट्रकी हानि

अर्थात् 'हिन्दुस्थानका इतिहास' शब्दोंके साथ हमारे मनश्चक्षुके सामने प्रायः महमूद (गजनवी) के हमलोंसे लेकर आजतकका जो इतिहास चमक जाता है उसका रूप होता है हिन्दुओंका आपसी कलह, बेखबरी- और इनके फलस्वरूप दुखदायी पराधीनताका इतिहास! यही रूप हमारी आँखोंमें फिर जाता है। बचपनसे इस-तरहका अधूरा ज्ञान और इससे पैदा होनेवाला अप समझ (गलतफहमी) जन्मभरके लिये बज्रलेप हो जाता है; क्योंकि, विद्यार्थिदशा पूर्ण होनेपर जीवन-कलहकी उफनती धारामें बहनेवाले मनुष्यको अपने धन्धकामोंके कारण तथा फुरसतका समय बितानेके लिये भिन्न भिन्न मनोरंजनके साधन प्राप्त होनेसे ऐसे विषयकी ओर बहुत कम ध्यान दिया जाता है मतलब, विपर्यस्त तथा स्फूर्ति-

शून्य इतिहासके अध्ययनसे बचपनहीमें 'निराशा' एवं 'स्वजनोंके बारेमें घृणा' आदि भावोंकी छाया हमारे बालकोंपर पड़ती है। और उससे आत्मश्रद्धा तथा क्षमताकी कमी होने लगती है; हमारे राष्ट्रकी यह कितनी बड़ी हानि है!

प्राकृतिक ज्वार भाटा

हाँ, हिंदीलोगों तथा उनके पिछले इतिहासपर कोई चाहे जितना गर्व करे, उसे मानना पड़ेगा कि हमारे कुछ दुर्गुणोंकी कठोर सजा हमें पराधीनताके रूपमें कई सदियोंसे भोगना पड़ रहा है, किन्तु इन दोषों तथा आजकी दीन दशाके कारण निराश होनेका कोई कारण नहीं है। संसारके इतिहासमें शायदही कोई ऐसा देश या समाज मिलेगा कि जिसे प्राकृतिक ज्वार भाटेके नियमके अनुसार, थोड़े कालतकही सही, पराधीनताके कुंद वायुमण्डलमें न सड़ना पड़ा हो। आज दुनियाका सिरताज बना हुआ वैभवशील देश अमरीका दोसौ वर्षों पूर्व इंग्लैंडके ताबेमें था। विशाल साम्राज्यका मालिक इंग्लैंड एक समय रोमके साम्राज्यका एक हिस्सा था। और वही इटली (रोमसाम्राज्य) आज इंग्लैंड-अमेरीकाके सामने भींगी बिल्ली बन बैठा है। यूनान, तुर्की तथा ईराणके इतिहासमें उन देशोंकी चढ़ती-पड़तीके कई कालखण्ड मिल जायँगे। तो फिर भारतके भाग्यमें कुछ समयतक बुरे दिन आ जायँ तो उससे भारतके मत्थे नादानीका दाग क्यों लगाया जाय? विदेशी आक्रमण केवल भारतपरही नहीं हुए हैं और यह भी बात नहीं कि इन आक्रमणोंमें हमेशा हिंदुही हारते रहे! हमारे गत इतिहासमें आक्रमकोंको मिट्टीमें मिलाकर उनमें लाभ कर लेनेवाले भी कई हिन्दु राजा हो गये हैं। उसीतरह धर्म दर्शन एवं विज्ञान आदि विषयोंमें भी कई जगत् वंद्य महान् व्यक्ति हमारे देशमें हो चुके हैं। उन्हीं महात्माओंके पुण्य-प्रतापसे कई संकटोंसे बचकर 'हिंदु-सभ्यता' अबतक बनी रह पायी है।

गौरवपूर्ण इतिहास

ऐसे तो हिन्दुजातिके इतिहासका प्रारंभ खिस्ताब्द पूर्व हजारों वर्षोंसे हुआ है। जिसे आज हम 'ऐतिहासिक काल' कहते हैं उसके पहले भी अत्यंत गौरवपूर्ण इतिहास हमारे पुरखाओंने बनाया और लिख रखा है। उस अतिप्राचीन कालके 'वैदिक काल' 'उपनिषद् काल,' 'रामायण काल' 'महाभारत काल' आदि कई खण्ड विद्वान् खोजकोंने मान रखे हैं। हमारे अनेक ग्रंथोंमें स्थान स्थानपर सूर्यवंशके 'रघुराजा' तथा 'श्री रामचन्द्र' या सोमवंशके 'भरत' और 'युधिष्ठिर' आदि बहुतेरे राजाओंकी वीरता, शासन पद्धति एवं प्राचीन देशस्थितिके वर्णन लिखे मिलते हैं।

दस हिंदु साम्राज्य

किन्तु साथ साथ प्राचीनतमत्वके कारण उनमें कुछ अस्पष्टतासी आ जाना अनिवार्य है। इसलिये जिस ग्रंथके ऐतिहासिक वर्णन अन्य देशोंके यात्रियों, राजाओं तथा राजदूतोंके हमारे बारेमें लिखित ब्योरोंसे मिला देख सके ऐसे हमारे हिंदु विद्वानोंके प्राचीन ग्रंथोंके ऐतिहासिक विषयही विश्वसनीय तथा बहुतांशमें प्रामाणिक माने जाते हैं। इसतरह लगभग दो-ढाई हजार वर्षोंके कालखण्डके लब्धप्रतिष्ठ महान् हिंदुसम्राटोंकी जीवनियाँ हम दे रहे हैं। ये दस जीवनियाँ केवल जीवनवृत्तांतके ढंगसे नहीं दिये गये; साथ साथ इनके आसपासकी ऐतिहासिक घटनाओं तथा आंदोलनोंका भी वर्णन दिया है।

(१) सम्राट् चंद्रगुप्त मौर्य ।

(ख्रिस्तपूर्व ३२२ से २९८)

भारतपर आक्रमण करनेवाले विदेशियोंपर विजय प्राप्त करके अक्षय कीर्ति पानेवाले तथा उसके द्वारा हमारी मातृ-भूमि को भी गौरव बढानेवाले कई हिंदु सम्राटोंमें चंद्रगुप्त (मौर्य) पहला प्रतापवान् सम्राट् था। इसके विषयमें कुछ इमारतें तथा शिलालेख आदि प्रत्यक्ष साधनों द्वारा काफी जानकारी मिल जाती है। उसी तरह, हिंदु, बौद्ध तथा जैन लोगोंके अनेक संस्कृत तथा प्राकृत ग्रंथ 'चंद्र-गुप्त' की महानता की साक्ष भरते हैं। यूनानका प्रसिद्ध प्रतिनिधि 'मेगास्थेने' चंद्रगुप्त के दरबारमें था। उसने भी इस भारत-सम्राट् के विषयमें तथा उस समय की देश-स्थिति के बारेमें सुंदर वर्णन लिख रखा है। इन बातोंसे 'चन्द्र गुप्त' की महानताका आभास मिल जाता है; किन्तु साथ साथ कुछ स्थानोंपर ब्योरेमें मतभेद भी दीख पडता है। इन मतभेदोंका मंथन कर सत्यको जाननेके लिए पण्डितोंका प्रयत्न जारी है, यह बडे संतोषकी बात है।

चंद्रगुप्तकी पूर्व पीठिकाके विषयमें पं० रामनरेश त्रि-पाठी लिखते हैं—

'बौद्ध ग्रंथोंसे मालूम होता है कि, गौतमबुद्धके शाक्य वंशके किसी राजापर 'विडूडभ' नामक राजाने चढाई की। उस समय कुछ शाक्य हिमालयकी तराईमें एक अच्छी जगह देखकर बस गये। उस प्रदेशमें मोर बहुत थे जिससे इस नयी बस्तीको उन्होंने 'मयूर-नगर' नाम दिया और यहाँके निवासियोंका नाम मयूर-निवासी या मौर्य पडा। 'चंद्रगुप्त' इसी कुलका युवराज था। आगे चलकर 'विडू-डभ' वंशके राजाओंने मौर्योंको बहुत सताया था। उन बुरे दिनोंमें मौर्यरानी गर्भवती होनेसे गुप्तरूपसे पाटली-पुत्रमें आ बसीं। वहींपर उसके एक पुत्र हुआ जो आगे चलकर 'चंद्रगुप्त मौर्य' नामसे विख्यात हुआ। 'चन्दो' नामके एक विश्वासयोग्य सेवकने, मौर्यरानीकी आज्ञासे, गुप्तरूपसे उस बालकको एक ग्वालेके पास पहुँचाया और फिर कुछ दिनोंके बाद उसे एक शिकारीके पास पहुँचाया गया। बालक बच्चोंमें खेलनेयोग्य बन गया।

एक दिन अन्य बालकोंके साथ वह बालक 'न्यायधाम' का खेल खेल रहा था। छोटासा चंद्रगुप्त एक ऊँची चट्टान-पर आसन जमाये हुए न्याय देनेका काम कर रहा था। इसी समय आर्यचाणक्य नामक एक ब्राह्मण रास्तेसे गुजर रहा था। उसका ध्यान बालकोंकी ओर आकर्षित हुआ। उसने इस बाल न्यायाध्यक्षके बारेमें छोटीमोटी बातें पूछीं। उस बालककी चतुराईसे ब्राह्मणने अनुमान किया कि यह बालक आगे चलकर बडा भाग्यशाली होगा! बहुत समझा-बुझाकर ब्राह्मणने छोटे चंद्रगुप्तके पालनका दायित्व अपनेपर लिया और उसको किसी सुरक्षित स्थानमें रख दिया। उसे युद्ध-कला तथा राजनीतिमें बढिया शिक्षा देकर उसे बहुत योग्य बनाया।

भारतका इतिहास राष्ट्रीय दृष्टिसे लिखनेवाले सर्व प्रथम पण्डित श्री. जयचन्द्रजी विद्यालंकार लिखते हैं।

'बुद्धके समय मोरिय नामक एक जातिका एक छोटा संघ-राज्य हिमालयकी तराईमें था। इसी 'मोरिय' का संस्कृतरूप मौर्य है; और इस मौर्य नामपरसे यह कहानी पीछे बना ली गयी कि चंद्रगुप्त मुरा नामकी एक दासी-का बेटा था। कोई घटना ऐसी हुई जिससे मोरिय संघके उस युवकने प्रजा-पीडक नन्दोंके वंशको उखाड फेंकनेका इरादा कर लिया। नन्द राजाने उसे मार डालनेका हुक्म निकाल रखा था, और फाँसीका परवाना सिरपर लिए वह मारा-मारा फिरता था। इसी समय तक्षशिलामें उसे एक अपने जैसा युवका पक्का ब्राह्मण मिल गया। उस ब्राह्मणका नाम विष्णुगुप्त चाणक्य या कौटल्य था।

चाणक्य और चन्द्रगुप्त दोनों असाधारण कर्तृत्ववान्, दृढमती और प्रतिभाशाली थे। ... (इतिहास-प्रवेश पृ. ७८)

चंद्रगुप्तके पहले पाटलिपुत्र (पटना) में नंदकुलके पराक्रमी हिंदु राजा राज्य करते थे जो सभी राजाओंमें प्रबल माने जाते थे। एक बार उनसे अपमानित होनेपर 'आर्य-

चाणक्य ' नंदोंसे बदला लेनेके बातमें था ।+ इस काम-की सफलताके लिए किसी राजपुत्रके हाथों मगधमें राज-क्रांति करनेके विचारसे वह घूम रहा था। सौभाग्यवश उसका मिलाप, जैसा कि ऊपर बताया है, चतुर तथा तेजस्वी बालक ' चंद्रगुप्त ' से हो गया।

फिर क्या था ! चाणक्यकी चतुरता और युवक चंद्रगुप्त-की वीरताका मिलाप एकही उद्देश्यके लिए हुआ। इन कर्तृत्ववान् गुरुशिष्योंको, यूनानके बादशाह अलक्सान्दर –सिकंदर–की चढाईके बाद पंजाबमें मची अंदाधुंद तथा विद्रोहसे, बडा अच्छा मौका मिला। उससे लाभ उठाकर, पराक्रमी नंद राजाको हराकर मगधका राज्य हथियानेके काममें वीर चंद्रगुप्तको चाणक्यकी राजनीतिज्ञताका पूरा पूरा सहयोग मिला और विजय होनेके बादकी राज-कारोबारकी नीति तथा प्रबंध आदि बातोंमें भी चंद्रगुप्तको आर्य चाणक्यकी सलाहें अत्यंत उपयुक्त थीं। इन दो महापुरुषोंने जिस राज्यक्रान्तिको सफल कर दिखाया, कुछ लोग उसे स्वार्थपरक मानते हैं। यह मत ठीक माननेपर भी, यह मालूम हो जायगा कि सिकंदरकी पंजाब–चढाई तथा उसके थोडेही समयके बादसे ' सेलेउक❀ निकेतर-की चढाई इन दो प्रसंगों तथा उनके परिणामोंपर गौर किया जाय तो चंद्रगुप्त–चाणक्यने नंदवंशको उखाडकर जो राज्यक्रांति की वह भारत राष्ट्रके लिए लाभकारी थी। देशका जो व्यक्ति या समूह (दल) हमेशा सतर्क रहकर अपने देशका गौरव बढानेकी सामर्थ्य रखता हो, उस व्यक्ति या दलका सत्तारूढ होना ठीकही मानना चाहिये और स्पष्ट है कि, अधिकार हाथमें लेनेके समय देशमें होनेवाली अ–शान्तिको इष्टापत्ति–लाभकारी संकट मानना चाहिये।

जगज्जेता अलक्सान्दर–महान् सिकंदर-ने खिस्तपूर्व ३२५ में तुर्किस्तान–ईराणके रास्ते सभी प्रदेशोंको रौंधते हुए आकर निदान पंजाबपर हमला किया। पंजाब जीतने-पर गंगाकांठेके रास्ते पूरबको जानेका उसका इरादा था। किन्तु मगध देश के ' नन्द ' राजा प्रबल होने तथा लम्बे अरसे तक चली हुई चढाइयोंसे उसकी सेना अब ऊब जानेके कारण अपने एक यूनानी सरदारको पंजाबमें रखकर सिकं-दर लौट गया। उसके लौटतेही पंजाबियोंने सरदारको भगाकर यूनानी सत्ताको समाप्त करनेका जतन जारी किया। इस कार्यका नेतृत्व युवक चंद्रगुप्तने किया। 'तक्ष-शिला ' जीतकर पंजाबपर उसने अपनी सत्ता जमायी। उसी पंजाबसे, ' पर्वतक ' राजाकी सहायतासे, चंद्रगुप्त-ने एक बडी सेना खडी करके आर्यचाणक्य की सलाहसे मगधपर धावा बोल दिया। चाणक्यने इस युद्धमें कई चालबाजियाँ कीं। निदान नन्द राजाओंकी करारी हार होकर खिस्तपूर्व ३२१ में भाग्यशाली ' चन्द्रगुप्त ' मगध-का अधिपति बना। बादमें आर्य चाणक्य तथा ' राक्षस ' –नंदोंका प्रधानमंत्री– की सहायतासे इस नये राजाने अपने शासन और सेनाका बहुत अच्छा प्रबंध किया।

खिस्तपूर्व ३०५ में यूनानका राजा सेलेउक निकेतरने फिरसे पंजाबमें अपनी सत्ता जमानेके हेतु भारतपर आक्र-मण किया। मगध–सम्राट् चंद्रगुप्त उसके ' स्वागत ' के लिए तैयार था। उसने घमासान युद्ध के बाद विजयमाला चंद्रगुप्तके गलेमें पडी; यह युद्ध कई पहलुओंसे महत्त्वपूर्ण है। अलक्सान्दरके हमलेके समय ' नन्द ' राजाओंने भारतपर उठनेवाले संकटको जानकर समयपर समुचित प्रतिकार करनेकी सतर्कता न दिखायी। पंजाबके वीर पुरु-राजाने प्रतिकार कियापर सिकंदरके लिये इससे अधिक शक्तिकी आवश्यकता थी। हाँ, चंद्रगुप्तने, सतर्क रहकर, सेलेउक बहुत आगे बढ आनेके पहलेही, सिन्धुके पास,

+कुछ लोगोंका कहना है कि ' नंद ' के साथ शत्रुत्वकी भावना पैदा होनेका कारण इतना मामूली तथा वैयक्तिक नहीं था। पंजाबपर होनेवाले यूनानी हमलेका संवाद दूर करनेवाले ' नंद ' को देकर भारतकी स्वाधीनताके वास्ते उसे यूनानियोंसे लोहा लेनेके लिए उत्साहनेके हेतु आर्य चाणक्य पाटलिपुत्र गये थे; किन्तु नन्दने इस बातपर ध्यान न देनेसे वह क्रोधित हो गया।

❀ दुर्भाग्यसे भारतीय शिक्षितोंके ग्रीक शब्दोंके उच्चारणके नियमोंकी ओर ध्यान न देनेसे मन चाहे उच्चारण किये जाते हैं। उदा॰ Seleucus का उच्चारण सेलेउक है, सेल्यूकस नहीं। अंतिम स तो प्रथमा एकवचनका सूचक है।

उसे हरा दिया और उसे लेनेके देने पड़ गये। परम प्रतापी चंद्रगुप्तने यह सिद्धकर दिखाया कि यदि हिन्दु लोग सतर्क रहे तो वे अच्छीतरह अपनी स्वाधीनताकी रक्षाकर सकते हैं।

हिंदुस्थानका वायुमण्डल उष्ण होनेसे ठंडे प्रदेशोंके उत्साहपूर्ण लोगोंके सामने हमारी सेनाएँ डट नहीं सकतीं यह एक अजीब सिद्धान्त हमारे कुछ इतिहासोंमें दिया हुआ मिलता है। अर्थात् संसारके प्रलयतक (हमारा देश विषुववृत्तके नजदीक होनेसे) हमारे देशका वातावरण गरमही रहेगा और इसीसे हम ठंडे देशोंके लोगोंके हिसाबसे दुर्बलही रहेंगे– तो फिर हम दीनदुर्बल हिन्दी लोग संसारके अन्ततक पराधीनही रहेंगे!! यह है ऐसे बेहूदे सिद्धान्तोंका निचोड़! किन्तु इन सिद्धान्तोंकी व्यर्थता चंद्रगुप्तके इस महान् विजयने सिद्ध कर दिखायी है। सेल्यूकस जीतने आया था किन्तु उसे इन शरतोंपर चन्द्रगुप्तसे सुलह करनी पड़ी—

(१) यूनानी पंजाबपर अपने दावा न करें और (१) हिन्दूकुश और काबुलका प्रदेश, (२) हरात, (३) हरहृती या अरखुती × (कन्दहार) और (४) गद्रोसिया (कलत लासबेला, मकरान) ये चार प्रान्त चंद्रगुप्तको सौंपदे।

(२) यूनानी प्रतिनिधि ' मेगॅस्थेने ' चंद्रगुप्तके दरबारमें रहे।

(३) चंद्रगुप्त सेल्यूकसको पाँच सौ हाथी दे दें।

इन शरतोंको मानकर तथा अपनी पुत्री ' हेलेन ' को चंद्रगुप्तसे ब्याहकर सेल्यूकस अपने देश चला गया।

उपर्युक्त सुलहके अनुसार मेगॅस्थेने चंद्रगुप्तके दरबारमें रहता था। उसके लिखे हुए वृत्तान्तोंसे चंद्रगुप्तके राज्य-प्रबन्ध तथा तत्कालीन देशस्थितिका ठीक पता चलता है। मेगॅस्थेनेके बाद भी यूनान तथा भारतके दूत एक दूसरोंके दरबारमें रहा करते थे। इसतरह चंद्रगुप्तके कर्तृत्वके कारण हिंदुस्थानका राजनैतिक महत्त्व काफी ऊँचा उठ गया। आंतर राष्ट्रीय स्नेह–संबंध बढ़ानेका काम, आगे चलकर, ' अशोक ' के धर्म प्रचारकोंने किया।

भारत–सम्राट् ' चंद्रगुप्त–मौर्य ' के पास छः लाख पैदल सेना, तीस हजार घुड़सवार, नौ हजार हाथी एवं चार हजार रथ–इतना प्रचण्ड चतुरंग सैन्य सज्ज रहता था। अलावा इसके, एक छोटासा बेड़ा तथा गुप्तचरोंका विभाग भी सुसज्ज था। हाँ, उस समय बेड़ेका उपयोग करना नहीं पड़ा था किन्तु सिन्धु नदीमें चलनेवाले व्यापारकी सुरक्षाके लिए अर्थात् समुद्रीडाकुओंपर नियंत्रण रखनेके लिए उस जलसेनाका उपयोग अवश्य होता था। इसी सेनाबलके जोरपर सम्राट् चंद्रगुप्तने गंगासागरसे (बंगाल-की खाडीसे) सिन्धुसागरतक (पश्चिम समुद्र जिसे हमारी बेवकूफीसे अरबी समुद्र कहा जाता है) अपनी सत्ता स्थिर कर दी। हिन्दूकुशके उत्तर तरफ कम्बोज देश अर्थात् बदख्शां तथा पामीर भी मौर्य साम्राज्यके अधीन हो गये थे। मतलब, चंद्रगुप्तका साम्राज्य मुगल सम्राट् अकबरके राज्यके बराबर विस्तृत था और प्रबल भी।

सम्राट चंद्रगुप्तका शासन प्रबंध भी व्यवस्थित था। वह अपनेको केवल ' राजा ' कहलाता था और मंत्रियों तथा परिषद्‌की सहायतासे शासन करता था। राजधानी पाटलीपुत्र तथा अन्य बड़े शहरोंमें प्रजा स्वयं ३० आद-मियोंकी एक सभा नियुक्त करती थी, जो शासनके कार्य-की देखरेख करती थी। न्यायदानका काम राजा स्वयं प्रतिदिन आकर करता था। पं० गौरीशंकर ओझा जैसे विद्वानोंका मत है कि चंद्रगुप्त ' शैव ' था, जहाँ उसके ' जैन ' होनेकी बात भी जैन ग्रंथोंके आधारपर कही जाती है। चाहे जो हो, चंद्रगुप्तके शासनमें हिन्दु, बौद्ध, जैन सभी अपने धर्मपालनमें स्वतंत्र थे। हरएक जनपद अपने अपने ' शील ' वेश, भाषा और आचार तथा ' समाज ' (खेलोंकी प्रतियोगिता) का बातमें पूर्ण स्वतंत्र था। राज-धानी पाटलीपुत्र नौ मिल लम्बी और दो मील चौड़ी थी जिसके चौगिर्द विशालपर कोटा था। परकोटेमें ६४ द्वार

× कन्दहार शहर जिस नदीके किनारे बसा है उसका नाम अब भी अरगन्दाब है। अरगन्द नदीका पुराना नाम अरखुती था। ' अरखुती ' शब्द ' हरहृती '– ' हरक्वती' का रूपान्तर था और वह ' सरस्वती ' का। यूनानी उसे Arohotia कहते थे। (इतिहास-प्रवेश–जयचंद्र विद्यालंकार)

थे; उसके बाहर बड़ी और गहरी खाई थी जो सोन नदी-के पानीसे भरा रहता था।

चंद्रगुप्तके महल नगरके मध्यमें अपने सौंदर्य तथा विशालतासे नगरकी शोभा बढ़ाते थे। उस समयके विदेशी यात्रियोंके मतानुसार भारतीय शिल्पकला बहुत ऊँची श्रेणीकी थी। खेतीबाड़ीकी उन्नतिमें राजपुरुष पूरा सहयोग देते थे तथा सींचाई, जंगल खानों आदि महकमे प्रजाकी भलाई और राज्यकी आय बढ़ानेको थे। कई नहरें बनी थीं। सुराष्ट्र (काठियावाड़)में गिरनारके पास पहाड़ी नदियोंको बांधोंसे रोककर चंद्रगुप्तने सिंचाईके लिये ' सुदर्शन झील ' बनाया था। खड़ी फसलकी चौथाई सरकार लेती थी। युद्धके समय भी खेत और जंगलोंको उपद्रव न होनेकी चिंता राजा करते थे। कपड़ेकी बुनायी, चमड़ेकी कमाई, खानें आदिकई धंधे देशभरमें होते रहते थे।

अन्यदेशोंमें व्यापारके लिये जानेवाले लोगोंको राजकी ओरसे बढ़ावा मिलता रहता था। पाटलिपुत्रसे पश्चिममें ' तक्ष शिला ' तक एक बहुत बड़ी और विस्तृत सड़क बनायी गयी थी। ऐसे तो राजधानी और भिन्न भिन्न जनपदोंके बीच सड़कोंका एक जाल-सा बिछा दिया गया था। घुड़सवारोंद्वारा डाक पहुँचायी जाती थी। मेगास्थेने लिखता है, ' भारतवर्षके लोग कभी झूठ नहीं बोलते, मकानोंमें ताले नहीं लगाते और अदालतोंमें बहुत कम जाते हैं '। चोरीका भय नहींके बराबर था। लोगोंमें सादगी और सुख था। लोगोंका आपसमें विश्वास था, मद्यपान तथा जुआ भी मर्यादित था। संस्कृतभाषाकी प्रधानता होते हुए भी पाली तथा मागधी भाषाओंकी प्रगति हो रही थी। धार्मिक शिक्षाका अच्छा प्रचार था। आर्यचाणक्य लिखित अर्थशास्त्रका महनीय ग्रंथ इसी युगकी देन थी। चंद्रगुप्तके राज्यप्रबंधकी बागडोर ' अर्थशास्त्र 'के नियमोंके अनुसारही घूमती थी।

ऐतिहासिक कालमें भारतीय साम्राज्यकी स्थापना करनेवाला प्रथम सम्राट् चंद्रगुप्त पचीस वर्षके अपने सुशासनके बाद खिस्तपूर्व १९८को अपने भौतिक कलेवरको छोड़ा। उनके पुत्र ' बिंदुसार ' साम्राज्यकी बागडोर सम्हाल की।

(२) सम्राट् अशोक

(खिस्तपूर्व २७२ से २३२)

सम्राट् ' बिंदुसार ' के पाटलिपुत्रके राजसिंहासन पर आरूढ होनेपर उसने भी पचीस वर्षोंतक सुशासन किया। उसके कार्यकालमें दाक्षिण्यकी ओर उसके साम्राज्यका विस्तार हुआ। राजकुमार अशोक उस समय पंजाब, प्रांतमें 'उत्तरा-पथ-चक्र ' के ' राजुक ' के नाते शासनका निरीक्षण करता था। सीमाप्रान्तके पहाड़ी लोगोंने एक समय ' बिंदुसार' के विरुद्ध बगावत करनेका प्रयत्न किया था। उस समय अशोकके पास भरपूर सेनाबल होते हुए भी उसने सम-झौतेसे शान्ति स्थापित की। इससे इसके पिताकी उसपर विशेष कृपा हुई। और ज्येष्ठ पुत्र न होनेपर भी अशोकके इन सद्गुणोंके कारण उसे युवराज-पद दिया। पिताके पश्चात् अशोक मगधके सिंहासनपर बैठा। इस तरह प्राप्त राज्य-वैभवको स्थिर करनेके लिये राजवंशके अन्य उत्तराधिकारि-योंके साथ दगा न करते हुए उन्हें अन्य चक्रोंके राजकुमार या धर्मप्रचारक नियुक्त किया। अशोकके खुदवाये शिला-लेखोंसे यह सब ब्योरा मिल जाता है।

खिस्तपूर्व २६१ में सम्राट् अशोकने कलिंग (उड़िया-उत्तर सरकार) पर महत्वाकांक्षेसे प्रचंड सेना लेकर चढ़ाई की। कलिंगराजके पास भी ६० हजार पैदल, एक हजार घुड़सवार एवं सातसौ हाथी जितनी सेना थी। इससे संग्राम घमासान हुआ और अशोककी जय हुई। किन्तु उस युद्धकी अनगिनत मनुष्य हानि देखकर स्वभावसे कोमल

अशोक हृदय पसीजा और युद्धसे उसका मन फिर गया। कहाँ युद्धकी जीवित हानि देखकर पसीजनेवाला सम्राट् अशोक और कहाँ जित जनताकी कत्लेआमकर मनुष्य मुंडों-की मीनारें खड़ी करनेवाला संगादिक विजेता तैमूरलंग !! भारतीय संस्कृतिमें पले अशोकका स्थान कोटि कोटि गुना ऊंचा है।

अशोकने अपने वंशजोंको दिया हुआ उपदेश देखकर उसकी मनोगतिकी कल्पना कर सकते हैं। अपने 'अनु-शोचन' के कारण उसने अनुभव किया कि 'जहाँ लोगों-का इस प्रकार वध, मरण और देश निकाला हो, वहाँ जीतना न जीतनेके बराबर होता है। इसलिये अपने बेटों-पोतोंके लिये यह शिक्षा दी की वे 'नयी विजय न करें और जो विजय बाण खींचकर ही हो सके उसमें भी क्षमा और लघुदंडतासे काम लें। धर्मके द्वारा जो विजय हो उसीको असल विजय मानें। ×

मतलब, युद्धके हत्याकांडसे पसीजा हुआ अशोकका मन स्वभावतः बौद्धोंके अहिंसावादी धर्मकी ओर मुंडा। श्री. विन्सेन्ट स्मिथके कथनानुसार अशोक शैव था और उस समयकी प्रथाके अनुसार वह बौद्धानुयायी बना। फिर भी इस धर्मांतरसे उसकी प्रजाका कोई अनिष्ट नहीं हुआ; उस-से उसे दुःख होनेका कोई कारण नहीं था। सम्राट् चन्द्र-गुप्तके समान उसने भी प्रजासे अच्छा बरताव किया। साथ साथ उसके धर्मप्रेमका प्रभाव समूचे राज्यप्रबंधपर भी अत्यंत इष्ट हुआ।

सम्राट् अशोक राजाके नाते अपना कर्तव्य मानता था कि प्रजाकी ऐहिक तथा पारमार्थिक याने नैतिक उन्नति करे। अपने कर्मचारियोंको उसने आज्ञा दी थी कि जब वे दौरोंपर जायँ तो वे स्थान स्थानपर सभाएँ कर लोगोंको धर्म-नीति-सदाचारकी शिक्षा दें। इन उपदेशोंसे लोग मेलजोलसे रहने लगे जिससे किसीको गुनाह करनेकी इच्छा तक न हो। अशोकने लिखा "प्रियदर्शी राजा (अशोक) चाहता है कि सब पन्थवाले सब जगह आबाद हों। वे सभी संयम और भाव-शुद्धि चाहते हैं।... सब पन्थोंकी सार-वृद्धि हो ...इसका मूल वचोगुप्ति (वाणीका संयम) है जिसमें अपने पन्थवालोंका अति आदर और दूसरोंकी निंदा न की जाय।" नेपोलियनका वह कथन कि, 'सबके हितमें व्यक्तिका हित है, इस प्रकारकी शिक्षा ही सच्चा राज्यप्रबंध है,' अशोककी शिक्षाका एक हिस्सा मात्र है।

राज्यप्रबंधकी सुविधाके लिए अशोकने साम्राज्यके-पंजाब, मालवा, कलिंग एवं कर्नाटक —चार हिस्से किये थे जिनकी राजधानियाँ अनुक्रमसे तक्षशिला, उज्जयिनी, तोसली (जिस-की जगहपर अब पुरी जिलेका धौली कस्बा है) एवं सुवर्ण नगरी (जिसका ठीक निश्चय नहीं हो सकता; कुछ लोग मैसूर मानते हैं) थीं। हर स्थानपर राजाकी तरफसे कुमार, महामात्य, या 'राजुक' शासनका निरीक्षण करते थे। वे प्रजाकी परिषद्की सहायतासे शासन करते थे। प्रत्येक जनपदका अपना अपना 'धर्म' और 'व्यवहार' (कानून) था। विशेष दशामें राजा इसमें दखल दे सकता था। सम्राट् अशोक विहार-यात्राएँ करता था। इससे स्पष्ट है कि 'चन्द्रगुप्त और अशोक' के साम्राज्यमें राजा और प्रजा मिलकर शासन होता था। राजा की सनकसे कारोबार नहीं चलता था।

अशोकने धर्मविजयकी नीति चलाई। उसके अनुसार एक शिलालेखमें लिखा है:—

"सड़कोंके किनारे छायाके लिए बरगद और आमके पेड़ लगाये हैं। एक एक मीलके फासलेपर कुएँ खुदवाये हैं। यात्रियोंकी सुविधाके लिए कई धरमसालाओं तथा अन्न-छत्रोंका प्रबंध है। गरीबों तथा पशुओंके लिये चिकित्सालय खोले हुए हैं।" तक्षशिला तथा नालंदा विद्यापीठोंकी उन्नतिके लिये अशोकने बहुत परिश्रम किये। व्यापार वृद्धि-पर ध्यान देकर यूनान तथा मिस्रतक उसने यातायातके साधन बनाये थे। इन बातोंसे उसका प्रजा-वात्सल्य झलकता है।

राज्यवैभवके परिचायक सुंदर और भव्य प्रासाद बनवाने पर भी उसका काफी ध्यान था। पाँचवी सदीमें भारत आया हुआ चीनी यात्री 'फाहियान' ने लिखा है 'अशोकका राज-प्रासाद देखकर मैं तो दंग रह गया। इतनी सुंदर रचना

× 'एताये चा अथाय इयं धम्मलिपिलिखिता किति पुता पापोता मे अ...सव्वं विजयमंविजयंत विथमनिसु सयकसिनो विजयसिलंति चाळहु दंडताचारोचेतु तमेव चविजयं मनतु ये धम्मविजये।'

करनेके लिये अवश्य उसने 'धर्मों' को इस कामपर नियुक्त किया होगा।

गिरनार जैसे पहाडोंके प्रचंड चट्टानोंपर अपनी आज्ञाएँ खुदवा रखनेवाले धर्मनिष्ठ सम्राट्को कहाँतक धन्यवाद दें। उसने कई भव्य स्तूप, विहार मठ भी सुंदरसे सुंदर बनवाये थे जिनमें चौदा शिलालेख तथा सात स्तम्भलेख बहुत प्रसिद्ध हैं। अशोककी एक 'कालवाक्या' का शिलालेख भी मिला है। इनमेंसे बहुतेरे लेख 'पाली' भाषामें लिखे हैं और लिपि ब्राह्मी (नागरी) है। कुछ लेख खरोष्टी लिपिमें भी पाये जाते हैं। ये लेख हर दिशामें दूरदूरतक मिलते हैं। कश्मीरमें श्रीनगर (पाण्डरेथन) तथा नेपालमें ललितपट्टण जैसे नये सुंदर नगर भी अशोकने बसाये थे।

चन्द्रगुप्तके समयसे यूनानके साथ जो आन्तरराष्ट्रीय संबंध पैदा हुआ था वह बिंदुसार तथा अशोकके समयमें जारी था। मेगास्थेनेके बाद 'डायमेस' नामक यूनानी दूत मगधके दरबारमें रहता था। मिस्रके राजा 'टालेमी फिलाडेल्फ' की ओरसे 'डायोनिसिअस्' नामक दूत भारतमें आया था। मिस्र, मकदूनिया, सीरिया, अफगानिस्तान, बरमा, सिंहल आदि देशोंमें अशोकने अपने धर्मप्रचारकोंको भेजा था। उन्होंने वहाँपर काफी अनुयायी बना लिये। 'थेराप्ट' और 'एसेनीज्' जैसे यूनानी पण्डितोंपर भी बौद्धमतका प्रभाव पडा था। इसतरह अशोकके समय अन्य देशोंसे भारतियोंका अच्छीतरह आवागमन जारी था।

राजदण्डकी धाक न दिखाते हुए मतपरिवर्तनके द्वारा अशोकने बौद्ध धर्मका प्रसार करनेकी पराकाष्ठा की। खिस्तपूर्व २४९ में वह 'बौद्ध' धर्मके अनुसार विहारयात्रा करने निकल पडा। प्रथम बुद्धके जन्मस्थान (लुंबिनी उद्यान) को गया। वहाँ एक स्तंभ स्थापन कर वह कपिलवस्तुको पहुँचा। उसके बाद श्रावस्ती और काशी (सारनाथ) क्षेत्रोंकी यात्रा कर गयामें 'बोधि' वृक्षके दर्शन किये। निदान नेपालके 'कुशी' क्षेत्रमें यात्रा समाप्त की। बादमें खिस्तपूर्व २४० में संन्यास याने भिक्षु-वस्त्र ग्रहण किया। आठ वर्षोंबाद भारतके ललामभूत सम्राट् अशोकका 'राजगृह' में निर्वाण हुआ।

सम्राट् अशोकके पश्चात् उसका साम्राज्य लगभग पचास वर्षोंतक मौर्य घरानेमें था। चंद्रगुप्तके समयसे उसके साम्राज्यमें (अफगानिस्तान) गांधार तथा बलुचिस्तान शामिल हो चुके थे। दक्षिणमें पेन्नार नदीतक उसकी सत्ता थी। इसतरह अमर्याद राज्यविस्तार तथा अजोड वैभवकी दृष्टिसे उस समयके सभी शासकोंमें अशोक श्रेष्ठ था। औरंगजेबने विस्तार लगभग उतनाही किया था किन्तु प्रजाकी सुख-शान्ति और संतोष तथा व्यक्तिगत नीतिमत्ता और सौजन्य आदि सद्गुणोंके विकासकी दृष्टीसे अशोकके सामने औरंगजेब किस गिनतीमें है? अशोकको 'राजर्षि' या 'दी ग्रेट' की उपाधि बिलकुल ठीक है।

(३) सम्राट् गौतमीपुत्र शातकर्णी

पाटलीपुत्रके मौर्य राजा कुछ समयके बाद निकम्मे और कर्तव्यविमुख निकले। इस कमजोरीसे लाभ उठाकर मौर्य घरानेका अन्तकर वहाँ 'शुंग' कुलकी सत्ता स्थापित हुई। शुंग घरानेके संस्थापक 'पुष्यमित्र' ने छोडा हुआ 'अश्वमेध' यज्ञका घोडा शाकलके मेनन्द्र राजाने पकडा। अर्थात् अपनी साम्राज्यसत्ताकी इस चुनौतीको स्वीकार कर घमासान युद्धमें मेनन्द्र (Menander) को हराया। ठेठ देशके गोरोंका हमारे हिन्दु सम्राटोंके लिये पराजयका यह और एक उदाहरण है। पहले चन्द्रगुप्त मौर्यने सेलेउकको करारी हार देनेकी बात हम बता चुके हैं। पाटलीपुत्रमें शुंग और कण्व वंशके राजाओंके लगभग १५० वर्षोंतक राज करनेके बाद (खिस्तपूर्व २८) महाराष्ट्र तथा आन्ध्रमें 'शातकर्णी' राजाओंने अपनी सत्ता जमा दी। दक्खिनमें सिमुक नामके ब्राह्मणने यह राज्य स्थापित किया उसके वंशका नाम सातवाहन था जिसका बादमें संस्कृत शालिवाहन रूप बना लिया गया। व्हिन्सेंट स्मिथका कथन है कि शात-

कर्णीके असली नामका पता नहीं है और सातवाहन वंश-का यह बारहवाँ या तेहरवाँ पुरुष होगा। खैर। उत्तर भारतपर चढाई कर वहाँ अपना अधिकार जमानेवाले 'शात-कर्णी' ही पहला 'दाक्षिणी' राजवंश था। इस गौरवकी बातको बादमें मालखेडके राष्ट्रकूटों तथा कृष्णाकाँठेके मराठोंने दुहराया जिसका जिक्र यथासमय होगा।

हमारे देशमें 'हिंदुस्थान देशका इतिहास' नाम धारण करनेवाले कई पुस्तकोंमें अधिकसे अधिक दस पंधरह पंक्तियोंमें इन आन्ध्र राजाओंको स्मरण मात्र मिलता है। अनेक चढउतारोंके बीच ४५० वर्षोंतक शासन करनेवाले इस वंशके लिये केवल इतनाही पाया जाता है कि 'अनेक हिंदु राजवंशोंमें आंध्र या सातवाहन नामक एक वंश हो चुका'!! यह क्यों? अज्ञान या अनास्था?

मत्स्य, वायु, ब्रह्माण्ड आदि पुराणोंसे 'आन्ध्र' राज-वंशके बारेमें कुछ जानकारी मिल जाती है। आन्ध्र राजाओंके कुछ सिक्के और शिलालेख भी मिलते हैं। गंगासागर याने बंगालकी खाडीमें गिरनेवाली कृष्णा तथा गोदावरी नदियोंकी दूनमें 'आन्ध्र' या 'तैलंगण' देश है जिसमें 'धन-कटक' में सातवाहनोंकी राजधानी थी। श्री. स्मिथ 'श्री-ककुलम्' ही सातवाहनोंकी राजधानी बतलाते हैं। कुछ समयके बाद पश्चिमकी ओर अधिक बढनेसे महाराष्ट्रके 'प्रति-ष्ठानपुर' अर्थात् पैठण उनकी राजधानी बनी। आन्ध्र देश-के इस शातकर्णी घरानोंमें कुल तीस राजा हुए और उन्होंने लगभग साढेचार सौ वर्षोंतक राज किया। उनमें सिमुक, कृष्ण (कन्ह), हाल, गौतमीपुत्र शातकर्णी, पुलुमायी एवं गौतमीपुत्र यज्ञ शातकर्णी आदि राजा अधिक प्रसिद्ध हो गये।

सम्राट् गौतमीपुत्र शातकर्णी एक महान् पराक्रमी राजा था। अशोकके बादके राजाओंमें इसका बडा ऊँचा स्थान माना जाता है। उसके समयके कुछ शिलालेख नासिक तथा कार्लामें मिले हैं जो उसके कार्यकालके अठारहवें वर्षमें बने हुए हैं। नासिकके शिलालेखमें एक दानका वर्णन इस प्रकार मिलता है—

क्षत्रपवंशीय नहपानके दामादके अधिकारमें होनेवाली जो भूमि उसने पहले भिक्षुओंको दी थी वह अब शातकर्णीके ताबेमें आ चुकी है (फिर भी) वह उन्हीं भिक्षुओंके कब्जेमें दानके तौरपर रहेगी।" इस लेखसे सम्राट् गौतमीपुत्र-की विजय और स्वयं हिन्दु होते हुए भी बौद्धोंके साथ उदा-रता तथा दानशीलताका परिचय मिल जाता है। इसी लेखके नीचे राजमाता 'गौतमी बालश्री' का भी एक लेख (दान-पत्र) है। उसमें कहा है—

'गौतमीपुत्र शातकर्णीके अन्तर्गत राजपुताना, गुजरात, उत्तर कोंकण आदि प्रदेश गिने जाते हैं। इस राजाने राज-पुतानेके राजाओंको नवाया और शक, पल्हव आदि लोगोंको मटिया मेट किया; क्षहरात वंशके राजा नहपानपर विजय प्राप्त कर सातवाहन वंशको बडी कीर्तिका लाभ कराया...'

यह लेख उसके राजके १९ वें वर्षमें लिखा गया है जिसमें उसके पराक्रम तथा राज्यविस्तारका आभास मिलता है।

शकोंपर उसकी विजय विशेष महत्वपूर्ण होनेसे नहपान वंशके सिक्कोंको अपनी छाप लगाकर चलाया। इन सिक्कों-पर चेहरा नहपानका है, उसके ऊपरके चिन्ह गौतमीपुत्रके हैं। उनपर 'धनुष—बाण' मुद्रित है और खरोष्ठीमें पहलेके कुछ अक्षर हैं। साथ ब्राह्मी लिपिमें 'रायो गोतमी पुतस सिरि सातकणिस' परकी तरफ लिखा मिलता है। ये सिक्के चांदिके हैं जो नासिकके पास पाये गये। अलावा इसके शकोंपर विजय करनेके पूर्व बने गज—चिन्हांकित सिक्के भी मिल गये हैं।

महाराष्ट्रकी कालगणनाका प्रसिद्ध 'शालिवाहन शक' (संवत्) शकोंपर किये विजयका स्मारकही कहा जा सकता है। कुछ लोगोंका मत है कि पुलुमायी ही शककर्ता-संवत् चलानेवाला-शालिवाहन है। किन्तु पुलुमायीने शकोंको उखाड फेंकनेकी बात नहीं मिलती; उलटे अपनेही ससुर 'रुद्रदामासे' पराजित होनेका उल्लेख पाया जाता है। शालिवाहन शकका प्रारंभ करनेवालेके बारेमें काफी मतभेद है। अस्तु।

आन्ध्र देशके इन शातकर्णीके पास एक लाख पैदलों, दो हजार घुडसवारों और एक हजार हाथियोंवाली सेना थी। उन्होंने शकोंका भारतमें उपद्रव हमेशाके लिये बंदकर दिया और इस देशकी आर्यसभ्यताकी रक्षा तथा उन्नति की। महाराष्ट्रकी कई सुन्दर 'लेणीं' उनकेही शासनकालमें बनी हैं। विद्वानोंका उन्होंने बडा आदर किया था। 'हाल' नामक सत्तरहवें शातकर्णी राजाने 'सप्तशती' नामक ग्रन्थ

किया। हमारे चरित्र नायक तेविसवीं पीढीमें थे। उसके बाद सत्ताईसवीं पुरुष 'श्री यज्ञ शातकर्णी' विशेष कर्तृत्ववान् था। उसके कुछ सिक्कोंपर जहाजोंकी मुद्रायें हैं जिससे अनुमान लगाया जा सकता है कि आंध्रोंका व्यापार तथा राजनैतिक वर्चस्व सागरपर तथा पूरबके कुछ द्वीपोंपर होगा। आंध्र प्रांतके 'श्रीककुलम्' नगरसे सुमित्र नामक एक साहसी हिन्दुके साथ कुछ आन्ध्र लोग पूरबके द्वीपोंमें गये थे। इसी 'सुमित्र' के कारण एक द्वीपका नाम 'सुमात्रा' बननेकी बात एक इतिहासकारने लिखी है। लगभग दो हजार वर्षों पहलेका आन्ध्र हिन्दुओंका यह सीमोल्लंघन अवश्य कुतुहलपूर्ण है।

सम्राट् 'गौतमीपुत्र शातकर्णी' खिस्ताब्द १३० में स्वर्गवासी हुआ। उसके बाद उसका पुत्र 'पुलुमायी' (जिसे 'वासिष्ठीपुत्र पुलुमायी' कहा जाता है) शासक बना।

---

(४) सम्राट् समुद्रगुप्त

(खिस्ताब्द ३३५ से ३८०)

आंध्र राजा कमजोर हो जानेपर उत्तर भारतमें काबूल-पेशावरकी ओर 'कनिष्क' आदि कुशानवंशीय राजाओंकी तूती कुछ समयतक बोलती रही। उसके बाद सन २७५ में पाटलीपुत्रमें 'गुप्त' वंशकी राजसत्ता प्रस्थापित हुई।

मालूम होता है कि ऐतिहासिक कालके सभी हिन्दु घरानोंमें इस 'गुप्त' घरानेपर प्रभुकी विशेष कृपा थी। हिंदुस्थानके बहुत बडे प्रदेशपर लगभग चार सौ वर्षोंतक शासन किया। 'श्रीगुप्त' से 'स्कंदगुप्त' तक गुप्तवंशके पराक्रमी पुरुषोंकी दीर्घ परंपरा हिन्दुओंके भाग्यमें बदी थी। और साथ साथ दुर्लभ लम्बी आयु थी बहुतेरे गुप्त राजाओंको प्राप्त थी। संसारभरमें दिखायी पडता है कि अत्यंत तेजस्वी, बुद्धिमान् एवं पराक्रमी पुरुषोंकी सारी कर्तृत्वशक्ति तीस चालीस वर्षोंमें समाप्त हो जाती है। इस नियमके अपवादरूप कुछ ही भाग्यवान् मिलते हैं। क्या राजनीति, क्या धर्म सभी क्षेत्रोंमें यही नियम-सा दिखाई पडता है। मराठी राजा, पेशवा या उनके सरदारोंकी यही हालत रही; धार्मिक क्षेत्रमें श्री शंकराचार्य, श्री. ज्ञानेश्वर, तुकाराम आदि सन्तोंकी बुद्धिमत्ता तथा विभूतिमत्ताका लाभ भारतको बहुत थोडे समयतक मिल पाया। गुप्तराजाओंको इस नियमका अपवाद होनेका सौभाग्य प्राप्त हुआ था। मिले हुए शासनाधिकारका उपयोग सभी गुप्त राजाओंने हिंदुसभ्यताकी सेवा तथा शक-हूणादि आक्रमणोंसे देशकी रक्षामें लगा दिया। यह हमारे लिये बडे अभिमान तथा आनंदकी बात है।

गुप्तवंशमें अनेक प्रतापी राजा हो चुके थे। उनमें सम्राट् समुद्रगुप्त पराक्रम तथा पांडित्य आदि अनेक गुणोंके कारण बहुत प्रसिद्ध हुआ। [गुप्त-संवत् शुरू करनेवाला चंद्रगुप्त (१ म) [सेल्यूकसको हरानेवाला यह नहीं है] समुद्रगुप्तका पिता था तथा चंद्रगुप्त (२य) विक्रमादित्य समुद्रगुप्तका पुत्र था।

इसतरह प्रतापी सम्राटों के मध्यमें मेरूमणिकी तरह आनेवाले समुद्रगुप्तसे गुप्तवंशका तेज और चमक उठा। अशोकके प्रयागवाले स्तंभ-लेखसे पता चलता है कि समुद्रगुप्तकी वीरता तथा कर्तृत्व देखकर ज्येष्ठपुत्र न होते हुए भी उसे पिताने 'युवराज' बनाया। चंद्रगुप्त (१ म) के बाद खिस्ताब्द ३३५ में समुद्रगुप्त सिंहासनपर बैठा।

सम्राट् अशोकके एक स्तंभलेखके नीचे गुप्तकालीन एक लेख मिला है जिसमें लिखा है:—

"...इस राजा समुद्रगुप्तने अनेक युद्धोंमें विजय पायी है। उसकी देहपर वीरोंके भूषणरूप शस्त्रके कई घाव दिखायी पडते हैं। शासनाधिकारी होते ही वह दिग्विजयके लिये बाहर निकला। पहले छोटा नागपूर, गंजम तथा कोलारको जीत लिया। उसके बाद दक्षिणके प्रख्यात 'कांचीवरम्' को गया। वहाँ पल्लव राजाको हराकर और फिर दिशा बदलकर नेलोर, देवराष्ट्र (महाराष्ट्र), मालवा होते हुए राजधानीको लौट आया। तीन हजार मीलकी यह प्रचंड चढाई उसने तेजीसे दो वर्षोंमें सफल की। यह राजा संगीतमें सिद्धहस्त था। अपनी प्रजाके लिये उसके हृदयमें लगन थी।... "

हमारे विद्वान् भी पर-प्रत्ययनेय-बुद्धिवाले-दूसरोंकी बुद्धिसे अभिभूत हो जानेवाले होते हैं। भारतकी किसी अच्छी चीजको- किसी महान् पुरुषको किसी युरोपीय चीजसे या महापुरुषसे उपमा देंगे। अंग्रेजी सँडोसे हमारे भीमको उपमा देंगे।

सम्राट् समुद्रगुप्तकी फुर्ती तथा पराक्रमको देखकर कुछ इतिहासकार उसे 'भारतीय नेपोलियन' कहते हैं। किन्तु समुद्रगुप्तमें उसकी अमोघ वीरताके साथ साथ उसका गानकौशल्य, विद्वत्ता, सदाचरण एवं उद्दिष्ट कार्यकी सफलता आदि बातोंमें नेपोलियन समुद्रगुप्तके सामने कहाँतक ठहर सकता है!

अशोकके समान उसके दरबारमें भी, मध्य आशियाके 'अक्ष' नदीके कूलके 'कुशान' राजा तथा गांधार (काबुल) एवं सिंधुद्वीपके राजाओंके दूत रहते थे। नेपाल, बंगाल, मालवा आदि प्रदेशोंके कई राजा उसके आधिपत्यको माननेवाले माण्डलिक थे। जिनको युद्धमें जीता उन राजाओंके साथ बड़े प्रेमसे सलूक किया, पदभ्रष्ट राजाओंको उनके स्थानोंपर फिरसे बिठाया। उसके माण्डलिकोंमें कुछ प्रजातंत्र गणराज्य भी थे। मतलब, दिग्विजय कर कीर्ति पैदा करना ही उसका मन्तव्य था यह स्पष्ट हो जाता है।

समूचे हिंदुस्थानमें साम्राज्य स्थापित हो जानेपर उसने अपनी प्रभुताका परिचायक, प्राचीन पद्धतिके अनुसार, 'अश्वमेध' यज्ञ किया। आर्य लोग इस यज्ञसंस्थासे बेहद प्रेम करते थे। भूतदयाके नामपर बौद्धोंने आर्योंकी यज्ञसंस्था लगभग बंद करवायी थी। किन्तु बीच बीचमें वैदिक धर्मके अभिमानी राजा तथा महान् ऋषि तरह तरहके यज्ञ कियाही करते थे। आर्योंके सामाजिक जीवनमें यज्ञसंस्था कहाँतक घुलमिल गयी थी तथा बड़ी उपयोगी थी इसका वर्णन करते हुए महाराष्ट्रके एक महान् पंडित श्रीविवेकरशास्त्री लिखते हैं-

(१) यज्ञसंस्थाके कारण गोत्र-प्रवर सम्बन्ध स्थिर होने लगे। (२) यज्ञके कारण अनेक विद्वान् इकट्ठे होते थे, जिससे दार्शनिक विचारोंमें प्रगति होती थी। (३) पुराणों, इतिहास तथा वक्तृता चमक उठीं (४) भिन्न भिन्न प्रकारके तथा भिन्न धंधोंके लोग इकट्ठा होनेके कारण व्यवहार-धर्म की पैदाइश हुई। (५) संघ तथा राष्ट्र-धर्म की कल्पनाओंका फैलाव होने लगा। (६) व्यापारमें वृद्धि हुई। (७) नृत्य-गायन आदि कलाओंको बढ़ावा मिला। अस्तु।

समुद्रगुप्तके यज्ञके समय दान की हुई सुवर्णमुद्राओंमेंसे कुछ मुद्राएँ खोजकोंके हाथ आयी हैं। उनपर, चिन-घोड़ेके चौगिर्द लेख 'राजाधिराजः पृथिवी विजित्य। दिवं जयत्यप्रतिवार्य वीर्यः।' और पट, देवी है तथा लेख है- अश्वमेधपराक्रमः। कुछ सिक्कोंपर 'वीणावादक' तथा 'धनुर्धर' के चित्र बने हैं और 'परम भागवत सम्राट् समुद्रगुप्त' ये शब्द मिलते हैं जिससे उसकी वैदिक-धर्ममें श्रद्धा प्रकट होती है। फिर भी बौद्धोंसे घृणा न करते हुए उनके साथ उदारताका व्यवहार करता था। मथुरा जैसे हिंदुओंके बड़े तीर्थक्षेत्रमें अनेक बौद्ध मठ थे जहाँ हजारों बौद्ध भिक्षु रहा करते थे।

गुप्तवंशके सम्राटोंके बहुत शिलालेख तथा सिक्के मिले हैं। उनसे उनके चरित्र तथा उस समयकी समाजस्थितिके बारेमें काफी जानकारी मिलती है। लेखोंपर भाषा 'संस्कृत' और लिपि ब्राह्मी थी। कुछ सिक्के विदेशी ढंगपर ढले हैं। एक सिक्केपर गरुडध्वज होकर 'समुद्रगुप्त' ये अक्षर ब्राह्मी लिपिमें किन्तु चीनी ढंगसे लिखे हुए हैं। 'वीणावादक' नमूनेमें सम्राट् अच्छे सजे वेशमें सुंदर मंचपर विराजमान हैं जिससे उसके गाननैपुण्यकी पुष्टी होती है। हरिशर्मा नामक कविके कथनानुसार सम्राट् समुद्रगुप्त काव्यमर्मज्ञ तथा रसिक था। ऐसे गुणवान् शासकके बारेमें औरही आदर पैदा होता है। गुप्त राजाओंके कार्यकालको 'सुवर्ण-युग' कहा जा सकता है। उनके समयमें पुराण, स्मृति, ज्योतिष, नाटक आदि संस्कृत साहित्यमें सम्राटोंके गुणग्रहणत्वके कारण काफी उन्नति हुई। समुद्रगुप्तके समय 'कोरिया' में बौद्ध धर्म स्थापित हो गया (३५२ इसवी)। उस देशकी भाषा भी तब भारतकी ब्राह्मी लिपिमें लिखी गयी, और तबसे आजतक वह समयके साथ बदलती हुई उसी लिपिमें लिखी जा रही है।

अमरावतीका संगमरमरका स्तूप, काशी (सारनाथ) का स्तूप, दिल्लीका लौहस्तम्भ, धातुओंके पुतले तथा मूर्तियाँ आदि देखनेसे तथा चित्रकला, शिल्प तथा मूर्ति ढालनेकी कला आदि विषयोंमें हिंदु कारीगरी बहुत उच्च कोटीको पहुंच गयी थी। सिंहल, चीन, जावा, रोम आदि दूर दूरके देशोंमें हिंदु व्यापारी तथा नाविक आते जाते रहते थे जिससे चारों दिशाओंसे, व्यापारिक उन्नतिके कारण, हिंदुस्थानमें धनका सैलाब आता था। इसतरह स्वातंत्र्य तथा सुखसमृद्धिका लाभ गुप्तकालमें सुदीर्घ समयतक भारतको प्राप्त हुआ था।

पैंतालीस वर्षोंके दीर्घ शासनके बाद चक्रवर्ति 'समुद्रगुप्त' खिस्ताब्द ३८० में स्वर्गवासी हुआ। उसके बाद उसको पुत्र दूसरा चन्द्रगुप्त (विक्रमादित्य) सम्राट् बना।

(५) हिन्दुओंके प्राचीन उपनिवेश

भारतीय इतिहासमें जो अनेक वर्णनीय तथा स्मरणीय विषय हैं, उनमें 'बृहद् भारतके हिन्दुओंके प्राचीन उपनिवेश' यह विषय अत्यंत महत्वपूर्ण है। उपलब्ध इतिहासकी पुस्तकोंमें इस विषयकी जानकारी नहींके बराबर मिलती है। यह कमी खलनेवाली है। श्री. जयचंद्रजी विद्यालंकारने इस बारेमें परिश्रम किये दिखाई पड़ते हैं।

आंध्रप्रांतके कुछ भारतीय 'सुमात्रा' में जा बसे थे, यह बात हम पहले कह चुके हैं। चीनी यात्री हियेन और युवान च्वाङ्के लेखोंसे हिन्दुओंके पूरबी उपनिवेशोंके बारेमें कुछ जानकारी मिलती है। जावामें ब्राह्मणधर्मका विशेष अधिक प्रचार होनेकी बातका हियेनने लिखी है। युवान च्वाङ् लिखता है:–

'भारतीय द्वीपसमूहों तथा उसके पूरबमें हिंदुओंके दस उपनिवेश थे जहाँ भारतीय धार्मिक आचार तथा रीत-रिवाजही बरते जाते थे।' सम्राट् अशोकके समयमें बौद्ध भिक्षु बरमा, स्यामतक तो पहुंचही चुके थे, किन्तु, बुद्धके जन्मके पहले भी हिन्दु लोग स्याममें गये थे। स्यामके राजा अपनेको प्रभु रामचंद्रजीके वंशज मानते हैं और अभी अभी राम (९ वाँ) सिंहासनस्थ था। वहाँ राज्याभिषेकके समय भारतीय पण्डितोंके आशीष आवश्यक होते हैं। स्याममें अयोध्या और लवपुर नगरोंके नाम हैं। कुछ राजाओंके नाम इन्द्रादित्य, धर्मराज आदि हिंदुनाम हैं। तमिलहनाडके लोगोंने वहाँ बस्तियाँ बसाई हैं। कलिंगप्रांतसे भारतियोंने आकर यवद्वीप और सुमात्रामें बस्तियाँ बसाई और इस महत्वपूर्ण घटनाके स्मरणमें उस समयसे वहाँ संवत्का प्रारंभ माना जाता है। यह समय खिस्तपूर्व ७५ का है। इन सभी प्रदेशोंमें साहित्य तथा लोकगीतोंमें रामकथाका बहुत बड़ा प्रचार है।

सातवाहनोंके अधिकारमें पहले पूरबी तटपर चोल थे। वे लोग कपड़ेके बेपारी थे। उनके जहाज बरमा मलाया आ-जा करते थे। आगे चलकर दसवी सदीमें चोलराज्योंका उदय हुआ जिसमें 'राजेन्द्र चोल' बड़ा पराक्रमी और कर्तृत्ववान् राजा था। उसने अपने जंगी बेड़ेसे श्री विजय। 'मलाया' प्रायद्वीप, सुमात्रा, जावा–आजकलका–पालेम्बांग-के शैलेन्द्र राजा 'संग्राम विजयोत्तुंगवर्मा' पर हमला कर उसे जीता और बृहत्तर भारतका बड़ा अंश अपने अधीन किया। कलिंगके रास्ते उसने गौड़ (पश्चिमी बंगाल) के महीपालपर चढ़ाई कर उसे युद्धमें भगा दिया। बंगालके खाड़ीका निकोबार द्वीप तथा पश्चिमीतटके लक्षद्वीव तथा मालद्वीव द्वीपसमूह भी जीत लिये थे। मदागास्कर, फिलिपीन तथा फोर्मोसामें भी हिंदु बस्तियाँ तथा छोटे छोटे राज्य बने थे।

ग्यारहवीं सदीसे इन प्रदेशोंके कुछ हिस्सोंमें मुस्लीमोंका, पहले राजकीय और फिर धार्मिक, वर्चस्व हो चला था। भारतवासी हिन्दु, स्वदेशके इन कठिन राजकीय तथा धार्मिक झगड़ोंके कारण, इन फैले हुए उपनिवेशोंकी ओर आवश्यक ध्यान न दे सके जिससे वहाँकी हिन्दु सत्ता कमजोर पड़ गयी और जहाँ मुसलमान पहुँचे नहीं थे वहाँ स्पेन तथा अमरीका आदि इसाई राष्ट्रोंने अपना पग जमा लिया। फिर भी 'बाली' द्वीपमें एक हिन्दु राजा अबतक राज्य करता था।

इन सभी उपनिवेशोंमें हिंदु और बौद्ध मिलजुलकर सुखसे रहते थे। आगे चलकर हिन्दुधर्मीय लोग कुछ ढीले पड़ गये; तो भी अनेक हिन्दु मन्दिरोंके अवशेष अब भी वहाँ मिलते हैं। कुछ लोग इस्लाम पंथीय बने फिर भी हिन्दुओंके आद्य-ग्रन्थ 'रामायण' को वे पूज्य मानते हैं। वहाँके लोग अबतक हनुमानजीकी पूजा करते हैं। बैंकाकके एक बौद्ध मंदिरके द्वारपर चांदीमें सुन्दर नक्काशी कर रामायणके कई दृश्योंको चित्रित किया गया है। इस प्रदेशमें त्योहार, उत्सव, नाटक, नृत्यकला आदि हरएक विषयमें हिन्दु सभ्यताकी छाप पूरेपूर मिल जाती है।

दूरतक फैले इन भारतीय उपनिवेशोंके बारेमें अत्यंत संक्षिप्त जानकारी यहाँ दी हुई है। पश्चिमी देशोंमें हमारे पुरखाओंने कई बस्तियाँ बसायी थीं। इसका सबूत यही है कि हमारी वर्णमाला, लिपि, भाषा आदि लगभग समान हैं और प्राचीन अवशेष तो ज्वलन्त प्रमाण हैं।

(६) सम्राट् हर्षवर्धन

(खिस्ताब्द ६०६–६४७)

ईसाकी पांचवी सदीके अन्तमें भारतपर ' हूण ' लोगोंके हमले होने लगे। ये हूण मध्य एशियासे निकलकर पश्चिममें बाल्कन प्रायद्वीपतक फैले हुए थे और पूरबमें पंजाबतक टिड्डीदलकी तरह हमला कर भारतीयोंको सताया करते थे। गुप्तवंशीय सम्राट् स्कंदगुप्तने घनघोर युद्ध करके हूणोंको भगा दिया था। उसके इस वीरताका वर्णन सैदपूरभीतरी (जि. गाजीपूर) के विजयस्तम्भपर लिखा है—

हूणैर्यस्य समागतस्य समरे दोर्भ्यां धरा कंपिता।

अर्थात् हूणोंके साथ हुए युद्धके समय (स्कंदगुप्त) बाहुबलसे पृथिवी काँपने लगी। प्रायः ५५ बरसोंतक हूणोंने गुप्त–साम्राज्यको छेडनेकी हिम्मत की। इस लम्बे अरसेके बाद जब फिर हूणोंका हमला हुआ तो गुप्त सम्राट् ' नरसिंह–गुप्त ' और मालवाके प्रतापी राजा ' यशोधर्मा विक्रमादित्य ' ने अपनी सेनाओंको मिलाकर तोरमाणके बेटे मिहिरकुलको, सन ५२८ में, मंदसौरके रणसंग्राममें, ' हिमालयके जंगलोंमें खदेडा और अपने चरणोंपर झुकनेको बाधित किया ' और इसतरह हिंदुस्थानसे हूणोंकी जड उखाड दी। और हर जगह शान्तियुगकी स्थापना की। हूणोंकी अपनी कोई सभ्यता न थी। भारतमें जिन्होंने नागरिक बनकर रहना स्वीकार किया वे यहाँके विशाल हिन्दु समाजमें घुलमिलकर हिन्दु बन गये।

उपर्युक्त विवेचनसे स्पष्ट होगा कि अपने देशपर संकट आय तो उसे दूर करनेके लिए संगठित होनेकी बुद्धि प्रभूने हिन्दु राजाओंको भी बख्शी है, अन्य समाजोंकीही तरह हिंदु-समाज भी स्वाधीनता-प्रेमी है और उसने विदेशी आक्रमणोंका अनेक समय सफल प्रतिकार करनेकी सामर्थ्य भी प्रकट की है। यूनानी, शक, हूण आदि लोगोंके अनेक आक्रमणोंसे बचकर हिन्दुसमाज तथा सभ्यता बनी रही है। हमलाखोर जातियाँ मिट गयीं यूनानी तथा रोमनी सभ्यताका नामोनिशान मिट गया किन्तु भारत पुराणकालसे अबतक बनाही हुआ है। अस्तु।

थानेसरका राजा 'प्रभाकर-वर्धन' ई. स. लगभग ६०५ में मर गया। उसकी रानी ' यशोमती ' के दो बेटे ' राज्यवर्धन ' और 'हर्षवर्धन' तथा एक कन्या, 'राज्यश्री' नामक थी। रानी ' यशोमती ' पतिके साथ सती हो गई। राज्यवर्धन गद्दीपर बैठा। राज्यश्री कन्नौजके राजा 'गृहवर्मा'से ब्याही हुई थी। मालवेके राजा ' देवगुप्त 'ने उसपर चढाईकर उसे मार डाला और रानी राज्यश्रीको कन्नौजके कैदखानेमें रखा। खबर पातेही राज्यवर्धनने अपनी बहनकी मुक्तिके लिये देवगुप्तपर चढाईकर उसे हराया, किन्तु बंगाल–बिहार-उडीसाके राजा शशांकने राज्यवर्धनसे मैत्री प्रकट की और छलसे उसे कत्लकर डाला। नौजवान हर्षवर्धनको सोलहवें सालकी उम्रमें थानेसरके राज्यकी बागडोर हाथमें लेनी पडी (प्रो. आपटेका मत है कि हर्षवर्धनका जन्मकाल विक्रम संवत् ६४७ ज्येष्ठ वदि ११ तदनुसार ई. स. ५९० होना चाहिये).

सम्राट् हर्षवर्धन ई. स. ६०६में ' शीलादित्य ' नामसे पंजाबके बपौतीमें मिले राज्यका स्वामी बना और तुरंतही अपनी बहन रानी ' राज्यश्री 'को छुडानेके लिए शत्रुकी ओर तेजीसे बढा। पहले वह हूणोंके हमलोंसे, उत्तरापथमें, परिचित हुआ था। इधर पूरबी देशी राजाओंके षडयंत्रने उसके भाई तथा बहिनोई बलि की थी। इससे उसने बडी प्रबल सिद्धता की थी। (छठी सदीके प्रारंभसे गुप्त साम्राज्य डगमगाकर अगले ५० वर्षोंमें ढल गया था)। उसने महत्वाकांक्षासे प्रेरित होकर अपने आधिराज्यको मान लेनेके लिये कई राजाओंके पास पत्र भेजे थे। वह एकही पडाव आगे बढा था कि एक अजीब घटना हुई। वह यों है:–

वहाँके एक प्रमुख गाँववालेने (चौधरीने) हर्षवर्धनको एक ' अँगूठी ' भेंटमें दी। उसे पहनते समय वह छटक कर नीचे गिर गई; यह देखकर कुछ सैनिक अपनी आगामी विजयके कार्यमें उसे असगुन मानने लगे। चतुर सम्राट्ने उनके मनकी बेचैनीको ताड़कर कहा:- सैनिको! देखो इस अँगूठीकी भूमिपर कैसी छाप पड़ गई है! इस छापकी तरह मेरे साम्राज्य-शासनकी छाप हर जगह लगी हुई तुम जल्दही देखोगे।' अर्थात् इस भाषणसे सैनिकोंके हौसले बढ़े यह कहनेकी आवश्यकता नहीं है। यह है समयकी सूझ। असगुनको शुभ सगुनमें पलट देनेवाले इंग्लैंड-विजेता ' विलियम दि कॉंकरर 'के बारेमें इसी प्रकारकी कहानी है। इंग्लैंडके तटपर फिसल पड़नेपर विलियम अपनेकी चड़में सने हाथोंको बतलाकर कहता है:- देखो, इंग्लैंड मेरे हाथ आ गया '। हिंदभूमी तो चतुरोंकी खान-ही है। अस्तु।

पहलेही पड़ावपर प्राग्ज्योतिषपुर (आसाम)के राजा भास्करवर्माके दूत उसे मैत्रीका संदेश लिये मिले। कन्नौजके करीब पहुंचनेपर हर्षको देवगुप्तको हराकर अनगिनत धन तथा मालवेके कैदियोंको लिये हुए सेनापति ' भण्डि ' मिला। यहीं उसने सुना कि राज्यश्री कैदसे भागकर निराश दशामें विन्ध्यके जंगलमें कहीं चली गयी है। तब गंगा-किनारे अपनी सेना रखकर हर्षवर्धन स्वयं बहनकी खोजमें निकला। विन्ध्याचलके जंगलोंमें शबर जवानोंकी सहायतासे उस समय वहाँ पहुँचा जब रानी राज्यश्री अग्निप्रवेश करनेकी सिद्धता कर रही थी। हर्षने उसे समझा-बुझाकर उसे सती होनेसे पराङ्मुख किया और उसे लेकर अपने खेमेमें लौट आया। रानी राज्यश्रीके संतान नहीं थी जिससे कन्नौजके राज्यकी बागडोरका सवाल पैदा हुआ। वहाँकी मंत्रि-परिषद्ने हर्षवर्धनको उस भारको ग्रहण करनेकी प्रार्थना की। फिर सर्वानुमतिसे 'बोधिसत्व अवलोकितेश्वर 'की आज्ञासे निश्चय किया गया कि रानी राज्यश्रीके नामसे कन्नौजका राज चले और राजा हर्षवर्धन बागडोर सम्हाले। तबसे शीलादित्य नामसे राजा हर्ष कन्नौजके राज्यका प्रबंध करने लगा और अन्त-तक उसने अपनी बहन तथा प्रजाका विश्वास निबाहा।

राज सम्हालतेही अपने भाईके हत्यारे बंगालके राजा शशांकपर उसने चढ़ाई की और उसे हराकर बंगालपर अपना अधिराज्य स्थापित किया। शशांकसे छुटकारा पानेके लिये पूरबके कामरूप (आसाम) तथा प्राग्ज्योतिषपुरके राजाओंने हर्षवर्धनका अधिराज्य मानकर और उसे कीमती भेंट देकर उसके साथ मैत्री की। इसतरह सम्राट् हर्षने पाँच वर्षके अंदर नर्मदाके उत्तरी प्रदेशपर अपना अधिकार प्रस्थापित किया। उसके बाद ' समुद्रगुप्त 'के समान दक्षिणकी ओर चढ़ाई करनेका उसने जतन किया, किन्तु उस समय उसीके समान एक सम्राट् पुलकेशी (चालुक्य) था जिसने रेवाके तटपर अपनी अजेय सेना सिद्ध रखी थी।

तुल्य बल होनेके कारण इन दो सम्राटोंके साम्राज्यकी सीमा नर्मदा बन गई और उत्तर-भारत तथा दक्षिण-भारत ये दो साम्राज्य प्राकृतिक विभाग बन गये। हर्षवर्धनके चरित्रसे पता चलता है कि अपना सार्वभौमत्व सिद्ध होनेपर अन्य राजाओंके राज्योंको बनाये रखनेकी हिन्दु सम्राटोंकी रीति हर्षवर्धनने भी चालू रखी। ख्रिस्ताब्द ६३३ में वलभीनरेश ध्रुवसेनपर हर्षवर्धनने चढ़ाई की। ध्रुवसेनने उसका सार्वभौमत्व मान लिया। बादमें सुराष्ट्र, कच्छके राजा भी उसकी शरणमें गये। क्रमशः ख्रिस्ताब्द ६४३ में उसने गंजाम (उड़िया) पर चढ़ाई की। यही उसका आखरी युद्ध था। इसके बाद अशोकके समान उसने धार्मिक विषयोंमें अधिक ध्यान दिया।

सम्राट् हर्षवर्धनके दरबारमें ईरान और चीनके दूत आते और उसके भी उन देशोंमें जाते। सागरी यातायातके कारण जावा, सुमात्रा द्वीपोंसे भी भारतीयोंका काफी संबंध था। चीनी यात्री युवान च्वांग बौद्ध ग्रंथोंको देखनेके लिये लगभग ख्रिस्ताब्द ६४० को भारतमें आया था। वह कन्नौजमें हर्षके दरबारमें तथा दक्षिणमें वातापीके सम्राट् पुलकेशीके दरबारमें भी पहुँचा था। युवान च्वांग लिखता है—

सम्राट् हर्षवर्धन (शीलादित्य) के पास पांच हजार हाथी, बीस हजार घुड़सवार तथा पचास हजार पैदल सेना थी। इनके बलपर उसने चालीस सालोंतक निर्विघ्न होकर अपने साम्राज्यको चलाया।

' बरसातके सिवा वह सदा अपने राज्यमें दौरे करता और फूसके झोंपड़ीमें पड़ाव किया करता था। वह योग्य और न्यायी शासक था। प्रजाके कल्याणके पीछे वह अपनी भूख और नींदको भूल जाता था। गरीबोंको बहुत दान

दिया करता था। उसकी राजधानी कन्नौज पाँच मैल लम्बी थी जिसके चौगिर्द भव्य परकोटा था। ऊँचे ऊँचे महल, सुरम्य बगीचे तथा वस्तु-संग्रहालय आदिके कारण नगर बड़ा सुंदर मालूम होता था।'

सम्राट् हर्षवर्धन शैव हिन्दु था। एक अभिलेखमें उसे 'परम माहेश्वर' कहा है। उसके चरित्र-लेखक बाणभट्टने लिखा है कि दिग्विजयके लिये प्रस्थान करनेके पूर्व उसने महेश्वरका पूजन किया था, किन्तु रानी राज्यश्रीके कारण धीरे धीरे उसका झुकाव बौद्धधर्मकी ओर हो गया। उसने अपनी प्रजाको धर्मके बारेमें संपूर्ण स्वतंत्रता दे रखी थी। हर पाँचवें वर्ष बड़ा समारोह कर, वहाँ विद्वानोंको आमंत्रित कर, उनके साथ वह धर्मचर्चा करता था। ऐसीही एक गोष्ठीमें हर्षने युवान च्वांगको बड़े सम्मानका स्थान दिया था। गोष्ठीकी समाप्तिपर वह ब्राह्मण, बौद्ध एवं जैन साधुसंतोंको बड़ी उदारताके साथ दान दिया करता था। ऐसेही एक अवसरपर उसके पासका धन खतम हुआ; उसे स्वयं ओढ़नेके लिए भी वस्त्र न रहा! अन्तमें अपनी बहनसे उसने एक गेरुआ कपड़ा ओढ़नेको माँग लिया! इसतरह निष्कांचन होनेमें हर्षको बड़ा आनंद मिलता था। अपने बाहुबलसे राज्यवैभव कमाकर 'कर्ण' के भी कान काटनेवाले उदार अंतःकरणसे उसे खर्च करनेवाला राजा अन्य देशोंके इतिहासमें शायदही मिलेगा।

सम्राट् हर्षवर्धन स्वयं भी बड़ा पण्डित था। उसका रचा हुआ 'नागानंद' नाटक सुप्रसिद्ध है। अलावा इसके 'प्रियदर्शिका' और 'रत्नावली' दोनों ग्रंथ भी उसीके लिखे होंगे। साहित्यके साथ वह चित्रकलामें भी सिद्ध हस्त था। 'बाँस खेरा' के एक तत्कालीन अभिलेखमें इसका जिक्र पाया जाता है। उसके पास बाणभट्ट, पुलिंदभट्ट, दण्डी, मयूर एवं मातंग दिवाकर आदि कई पण्डित होते थे। उसके राजकालमें नालंदा, कन्नौज, प्रयाग, गया आदि स्थानोंमें बड़े बड़े विद्यापीठ थे। इनमें नालंदाका विद्यापीठ बहुत प्रसिद्ध था। उसके खर्चके लिए हर्षवर्धनने सौ गाँव लगा दिये थे। उस विद्यापीठकी इमारत छः मंजिलेवाली और बहुत विशाल थी। उसमें दस हजार विद्यार्थियोंका प्रबंध था। वहाँ प्रतिदिन भिन्न भिन्न सौ विषयोंपर बड़े बड़े पण्डितोंके प्रवचन होते थे।

बौद्धधर्मके अलावा सांख्य, योग, न्याय आदिशास्त्रों तथा तर्कशास्त्र, चिकित्साविद्या आदि अनेक विषयोंकी शिक्षा देनेके लिए अध्यापक दाखिल उस विद्यापीठमें रखे हुए थे। उस विद्यापीठका कुलगुरु 'शीलभद्र' नामक एक पण्डित था और उसका कुलपति स्वयं हर्षवर्धन था, अर्थात् वहाँके दस हजार विद्यार्थियोंको अन्न-वस्त्र देनेवाला स्वामी था। इस नालंदा विद्यापीठकी शिक्षाकी श्रेष्ठताके बारेमें कविश्रेष्ठ श्री. मैथिली शरणजी गुप्त लिखते हैं—

पढ़ते सहस्रों शिष्य हैं; पर फीस ली जाती नहीं।
यह उच्च शिक्षा तुच्छ धनपर, बेच दी जाती नहीं॥

आजकलका शिक्षा प्रचार और उसके लिए बढ़ता हुआ खर्च आदि नयी कल्पनाओंमें मस्त हमारे नेता इस प्राचीन इतिहाससे क्या कुछ नहीं सीख सकते?

सम्राट् चंद्रगुप्त (मौर्य) से आगे लगभग एक हजार वर्षोंके समय स्त्री शिक्षा तथा स्त्रियोंका समाजमें स्थानके बारेमें ब्योरेवार जानकारी नहीं मिलती। किन्तु जो मिलती है उससे स्पष्ट होता है कि स्त्रियोंको समाजमें पूरी स्वतंत्रता थी, उनमें परदा नहीं था; विवाह सयानी होनेपर होता था; शिक्षाका प्रचार बहुत था; राजघरानेकी कन्याओंतक नाच-गाना सीखती थीं; अशोककी रानी 'कारुवाक्या' तथा शातकर्णीकी माता 'बालश्री गौतमी' के अभिलेख प्राप्त हुए हैं। हर्षकी बहन महान् राजकीय बंदी होनेपर भी कैदसे छटक गयी और आगे चलकर अपने भाईके साथ धर्मसभामें बैठकर वादविवाद सुना करती थीं। तथा हर्षवर्धनको राज चलानेमें सहायता देती थी। श्रीशंकराचार्य तथा मंडनमिश्रके शास्त्रार्थके समय मंडनमिश्रकी पत्नीने 'पंच' का काम किया था, यह कथा हर हिन्दुके लिए गौरवपूर्ण बात मालूम होगी।

खिस्ताब्द ६४७ में हर्षवर्धन अर्थात् शीलादित्य स्वर्गवासी हुए। उसके पुत्र न होनेसे उसके प्रधानमंत्रीने कुछ समयतक राज चलाया। अस्तु। प्राचीन हिन्दुसम्राटोंमें 'हर्षवर्धन' ही आखिरका प्रसिद्ध सम्राट् था। बगदादके विख्यात खलीफा हरून-अल्-रशीद या खलीफा 'मामून' के समानही हर्षमें शौर्य, प्रजा-प्रेम तथा विद्याभिरुचि मालूम पड़ती है।

(७) वैदिक-धर्मका पुनः उत्कर्ष

भारतके इतिहासमें हिन्दु सम्राटोंके बराबर ऋषियों आचार्यों एवं साधुसन्तोंका महत्त्व समझना चाहिये। क्योंकि इन्हींकी तपस्या तथा दार्शनिक ज्ञानकी छाप परंपरासे हिन्दुसमाजपर बहुत गहरी पडी है जिससे स्वाधीनताके कई आंदोलन खडे होकर सफल हुए।

वैदिकधर्म तथा बौद्धधर्ममें लगभग एक हजार वर्षोंतक मतपरिवर्तनका शान्त संग्राम जारी था। एक समय बौद्धमतका इतना प्रसार हुआ था कि वैदिकधर्म नामशेष हो जानेका भय पैदा हुआ था। ऐसे कठिन समयमें भी समयके रुखको कलामंडी देकर, कुमारिल भट्ट तथा श्रीशंकराचार्य जैसे महान् विभूतियोंने, वैदिकधर्मका उद्धार किया। कुमारिल भट्टने वेद तथा यज्ञसंस्थाके बारेमें जनताके मनमें आदर पैदा करनेका जतन किया। वह सातवीं शतीमें था। वह महान् पण्डित था, उसने 'तंत्र-वार्तिक' आदि कई ग्रंथ लिखे हैं जिससे उसके उत्तरभारतीय होनेका मत विद्वानोंने प्रकट किया है। बौद्धधर्मके कारण अहिंसा तथा संन्यास बहुतही जनप्रिय हो चुके थे। जिससे कुमारिलभट्टके पश्चात् हिंसा तथा कर्मकाण्डयुक्त यज्ञ-याग लगभग बंद हो गये थे। फिरभी बौद्धधर्मकी अवनति होकर उसका किया वैदिकधर्मका पुनरुज्जीवन आगे चलकर भी अक्षुण्ण रहा। श्रीशंकराचार्य केरलप्रांतके 'कालटी' ग्राममें खिस्ताब्द ७८८ में एक नम्बुद्री ब्राह्मणकुलमें जन्मे। उनके पिताका नाम शिवगुरु तथा माताका नाम आर्याम्बा था। शिवगुरु बडे विद्वान् थे और उन्हे कालटी ग्राम अग्रहार याने जागीरमें मिला था। शंकराचार्यके बचपनमेंही शिवगुरुकी मृत्यु हुई, तब उनकी माता आर्याम्बाने पांचवे वर्षमें उनका उपनयन संस्कार किया। अलौकिक बुद्धिमान् होनेसे आठवें वर्षमें उन्होंने वेदाध्ययन पूरा किया, बारहवें वर्षमें सभी शास्त्रोंका अध्ययन कर शंकर बडा पण्डित हुआ। इस छोटी उम्रहीमें उन्होंने संन्यास-ग्रहण किया। इनके आश्रमगुरु गोविंदयति थे। शंकराचार्यने भारतभर भ्रमण कर 'मण्डनमिश्र' आदि अनेक पण्डितोंसे धर्म तथा दर्शन विषयपर शास्त्रार्थ किया। उनके 'अद्वैत' सिद्धान्तके आगे उनके पहलेके अनेक 'वाद' व्यर्थ हो गये। 'अहं ब्रह्मास्मि'के साक्षात्कारके आगे बौद्धोंका 'नास्तिपक्ष' तथा जैनोंका 'स्याद्वाद' फीके पड जाना स्वाभाविक था। इसीसे शृंगेरी मठके श्रीशंकराचार्यकी बिरुदावलीमें–

> गुरुपरंपराप्राप्तषड्दर्शनस्थापनाचार्य...वैदिकमार्गप्रवर्तकसकलनास्तिकमतोच्छेदपूर्वकसकलधर्मसंस्थापनैक धुरीण...

आदि गौरवपूर्ण शब्द गूँजते हैं। स्वधर्मपर कुछ समयके बाद आए हुए मालिन्यको दूर करने या अन्य धर्मियोंसे सर्वसाधारण जनताके बुद्धिभेदको दूर करनेके लिए स्वधर्मके पूज्य धर्मग्रन्थोंका जनताको यथार्थ ज्ञान करा देना दार्शनिकों तथा सच्चे सुधारकोंका कर्तव्य होता है। युरोपमें मार्टिन ल्यूथर नामक पण्डितनें 'बाइबल' पर श्रद्धा रख उसका ज्ञान लोगोंको करा दिया, जिससे लोगोंको अपने स्वधर्म और कर्तव्यकी जानकारी होकर धर्मध्वजियोंके अयोग्य करतूतोंका भण्डाफोड हो गया। इसी उद्देशसे हमारे शंकराचार्यने अनेक ग्रंथ लिखे। पवित्र गीता, उपनिषदों एवं वेदांतसूत्रों आदि ग्रंथोंपर भाष्य (स्पष्टीकरण) किया। उसे 'शांकरभाष्य'के नामसे प्रसिद्ध है। वेदोंके लिए आदरभाव बढाकर और दर्शनमें अद्वैतमत अर्थात् चराचर सभी वस्तुओंमें एकही तत्त्वका भरा हुआ होना, का प्रतिपादन कर बौद्धमतको भारतसे उखाड दिया। इतिहासमें

शंकराचार्यके समान बुद्धिमान्, विवादपटु एवं अजोड़, उत्साही दार्शनिक शायदही मिलेगा।

अपना कार्य अखण्ड चालू रहे इस हेतु चारों दिशाओंमें [शृंगेरी, द्वारका, बद्रिकेदार तथा (जगन्नाथ) पुरी] अपने मठ स्थापित किये जो आजतक बने हुए हैं और उनकेद्वारा धार्मिक तथा कुछ सामाजिक प्रश्नोंके निर्णय होते हैं। आचार्य-पीठोंपर अच्छे विद्वान् तथा सुयोग्य संन्यासी नियुक्त होते हैं। आद्य शंकराचार्यके समान बादके कई आचार्योंने धर्मग्रंथोंपर 'भाष्य' लिखे हैं। विजयानगरके हिन्दु साम्राज्यको शृंगेरी मठके आचार्योंका बड़ा सहारा था। उनकी बिरुदावलीमें 'कर्नाटक-सिंहासन-प्रतिष्ठापनाचार्य' शब्द मिलते हैं, जो उपर्युक्त कथनकी पुष्टी करते हैं।

हाँ, लगभग इसी समय सिन्धमें मुसलमानोंका प्रवेश हुआ; किन्तु शंकराचार्यके सामने बौद्धमत खण्डनका व्यापक और महत्त्वपूर्ण कार्य था और दूसरे, वे अपनी उमड़ती जवानीहीमें चल बसे जिससे इस नये इस्लामी संकटकी ओर उनका ध्यान न जा सका। और ऐसे तो इस्लामीमतका आक्रमण एकस्थानमें बैठकर पूर्वपक्ष-उत्तरपक्ष आदि शास्त्रार्थके नियमोंसे थोडेही होता था? उसका खण्डन तो राजपूतोंका प्रखर क्षात्रतेजही अपने खड्गद्वारा हो सकता था। अस्तु। शिकाब्द ८१० में श्रीमत् शंकराचार्य समाधिस्थ हो गये।

---

(८) चक्रवर्ती बाप्पा रावळ

(जन्म- ई० स० ७००, संन्यास ई० स० ७६३)

बौद्धधर्मका जोर धीमा पड़कर 'वैदिक' धर्मका प्रभाव बढ रहा था तभी इस देशपर सिंधकी दिशामें अरबोंके धार्मिक तथा राजकीय आक्रमणोंका एक नयाही संकट चढ आया। वीर दाहिरने अरबोंका डटकर प्रतिकार किया; किन्तु बौद्धोंके अहिंसाविषयक अनुचित विचारों, उस स्थानके हिन्दु राजाओंके ढीले अनुशासन तथा 'मोका बसय्या' जैसे नीच आदमीके विश्वासघातके कारण दाहिर-को हारना पड़ा।

इस विजयसे फूले हुए अरब बड़े आवेशके साथ राज-स्थानमें घुस पड़े। हाँ, हिन्दुओंके सद्भाग्यसे वहाँ उनकी दाल न गली। चित्तौडके 'बाप्पा रावळ' नामक हिन्दु वीरने उन्हें मार भगाया। उदयपूरके तेजस्वी राजघरानेका 'बाप्पा रावळ' मूलस्थापक था।

चक्रवर्ती बाप्पा रावळके बारेमें विश्वास योग्य ऐतिहासिक जानकारी बहुत कम मिलती है। फिर भी कुछ किंवदन्तियों तथा पायी गई उसकी सुवर्णमुद्राओंसे निश्चय होता है कि वह महाप्रतापी और एक बड़े राज्यका अधिपति था। उसकी जीवनी पं. रामशंकर त्रिपाठीने बड़े परिश्रमसे लिखी है जिसके अनुसार मालूम होता है कि-

चक्रवर्ती बाप्पा रावळ प्रभु रामचंद्रसे अस्सीवीं पीढीमें था। श्रीराम-पुत्र 'लव' लवपुर (लाहौर) में राज करता था। उसके एक वंशज 'कनकसेन' गुजरातमें आया। बहुत समय बीत जानेपर उसके 'गुह' नामक वंशजको

' ईडर ' का राज प्राप्त हुआ। उससे आठवाँ पुरुष ' नागादित्य 'की जब मृत्यु हुई तब उसका बेटा ' शैल ' तीन सालका बच्चा था। उसके राज्यमें बगावत बढ जानेके कारण राजपुरोहितने शैलको भगाकर 'नागदा'में रख दिया। वहाँ प्यारसे उस अनजान बच्चेको लोग ' बाप्पा ' कहते थे और यही नाम आगे चलकर मशहूर हुआ।

बचपनमें वह पासके जंगली भीलोंके बच्चोंके साथ खेला करता। इन्हींसे वह तीरंदाजी, कुश्ती आदि सीखकर शिकार करने लगा। उन भील-बच्चोंके अगुआ 'बालीय ' तथा ' देव ' थे जो बाप्पाके अभिन्न मित्र थे। उन्हींके हाथों, बडे समारोहके साथ, चित्तौडमें, बाप्पाको ' राज-तिलक ' हुआ था। और अबतक यह रस्म मेवाडके महाराणाके राजतिलकके समय निष्ठापूर्वक अदा की जाती है।

नागदाके पास एक जंगली गुहामें ' हारित ' ऋषि तप कर रहे थे। बाप्पाने बचपनमें उनकी अच्छी सेवा की थी। इससे संतुष्ट होकर उस ऋषिने बाप्पाको गुरूपदेश देकर ' शिव ' (एक लिंगजी) की उपासनाका आदेश दिया था और यह आशिष किया था कि ' वह सार्वभौम राजा होगा।' इसकी पुष्टि अचलगढके शिलालेखसे होती है।

साधूके आशीषको सफल बनानेके हेतु बाप्पा रावल मौकेकी ताकमें था। भील मित्रोंके साथ वह चित्तौड दर-बारमें पहुँचा। बाप्पाका तेजस्वी मुखमण्डल देखकर राजाने उसे और उसके भीलोंको अपनी सेनामें भरती कर लिया और कुछ दिनोंके बाद बाप्पाका कर्तृत्व देखकर उसे सेना-पति बनाया। इस पदको निभानेकी क्षमताकी कसौटीका प्रसंग बहुत जल्द उपस्थित हुआ। सिंधसे अरबोंकी सेना चित्तौडके पास पहुँच गयी। राजा स्वयं शूर किन्तु वृद्ध था। अरबोंके झपट्टेकी बातोंपर ध्यान देकर मेवाडको तहस-नहस होनेसे बचानेके हेतु सभी पुराने सरदारोंने घुटने टेक देनेकी सलाह दी; केवल बाप्पाने उस बूढे किन्तु मानी राजाके मनके भाव भाँपकर अपने प्राणोंकी बाजी लगाकर युद्ध करना तय किया। वीर राजपूतों तथा शूर भीलोंने अपने नौजवान सेनानीकी आज्ञाके अनुसार लिखता की।

निदान चित्तौडगढकी तलहटीमें बाप्पाने अरब शत्रुओं-को घमासान जंगमें हराकर विजय प्राप्त की और उन्हें सिन्धु नदीतक खदेडा। इतनेसे बाप्पाका क्रोध शांत न हुआ। मुहम्मद-इब्न-कासिमके अपने पीछे रखे हुए सूबेदार 'सेलीम' को भगाकर उसके स्थानपर अपने एक सरदारको नियुक्त किया और उस सेलीमकी बेटीसे ब्याहकर बडे हर्षके साथ वह चित्तौड लौटा। अरबपर किये इस विजयने बाप्पाकी कीर्तिमें चार चाँद लगा दिये और चारों तरफ उसकी धाक जम गयी। बूढे राजाने उसका शानदार स्वागत किया और कुछही समयके बाद भाग्यशाली बाप्पाको मेवाडका आधिपत्य मिला (खिस्ताब्द ७३०)।

चक्रवर्ती और सार्वभौम उसकी उपाधियाँ थीं ही। इसके अलावा, ' हिन्दुसूर्य ' यह सम्मानसूचक उपाधि धारण कर वह मेवाडके सिंहासनपर चढा था। मेवाडका सैंकडों वर्षोंका इतिहास इस बातकी पुष्टि करता है कि उसके और उसके वंशजोंके लिए यह ' हिन्दुसूर्य ' उपाधि बिलकुल ठीक थी। सूर्यवंशी रामचंद्रके वंशज होनेसे उनके झण्डेपर ' उगते हुए सूर्य ' का चिन्ह अंकित था।

राज्यवैभवके समान गृहसौख्य भी उसे अच्छी तरह मिला। उसका रनवास अनेक सुंदरी स्त्रियोंसे भरा रहता था। उनमें एक मुस्लीम युवती भी थी जिसका जिक्र हम करही चुके हैं। कर्नल टॉडके अनुसार, उस मुसलमाननीकी संतानको भी राजपूतोंका-सा सम्मान प्राप्त है, जिससे सिद्ध होता है कि उसे हिन्दु बना लिया गया होगा। बाप्पाके बहुत संतानें थीं जो तेजस्वी थीं। उसके अनेक बेटों-पोतोंने कई राज्य स्थापित किये हैं। वे अपनेको 'सिसोदिया' राजपूत कहलाते हैं। बाप्पा रावळके वंशजोंका विस्तार लगभग एक लाख लोगोंतक राजस्थानमें पाया जाता है। इस प्रकार गृहस्थाश्रमके सभी ऐहिक सुखोंको

५० वें वर्षतक भोगकर और क्षात्रधर्मके सभी उचित कर्तव्योंको पूरा कर बूढे होनेपर वानप्रस्थाश्रम ग्रहण किया और अपने बेटे 'खोम्माण (१म)' को गद्दीपर बिठाया। हिन्दुधर्मकी शिक्षाके अनुसार 'वर्णाश्रम' धर्मका पालन करनेवाला बाप्पारावळ धन्य हैं। अनेक प्राचीन हिन्दुराजाओंके चरित्रोंमें भी ऐसी घटनाएँ दीख पडती है।

चक्रवर्ती बाप्पा रावळ परमप्रतापी होनेके साथ साथ अध्यात्मज्ञानी भी था। सौराष्ट्रकी चढाईके बाद वहाँसे देवी 'ब्यानमाता'की मूर्तिको लाकर उसने चित्तौडमें स्थापना की और वही मेवाड राजवंशकी कुलस्वामिनी मानी जाती है। हारित मुनिकी आज्ञाके अनुसार शिवोपासनाके लिए उसने भगवान् एकलिंगजीका मंदिर भी बनाया था। और बादमें उसीको अपना समूचा राज अर्पण कर एक लिंगजीके प्रधान मंत्रीके नाते राज चलाया। उसके वंशजोंने भी वही किया। इसीसे उन्हें 'दीवानजी'की उपाधि प्राप्त है। कहा जाता है कि वानप्रस्थ ग्रहण करनेके बाद भी एकबार बडी सेना लेकर कश्मीरसे कंदाहार-ईरानतक चढाई कर दिग्विजय किया था। किन्तु इसके बाद वह चित्तौड न लौटा। उसने 'संन्यास' ग्रहण कर कुछ समयतक तीर्थयात्रा तथा भगवच्चिन्तन कर अन्तमें हिमालयमें अपने नश्वर देहको छोड दिया।

बाप्पाका राजवंश अबतक मेवाडमें 'उदेपुर' का शासन कर रहा है। इस्लामी आक्रमणसे बहुतेरे राष्ट्र छिन्न-भिन्न हुए किन्तु इस राजवंशने पीढी दरपीढी बडी दृढतासे सामना कर वैदिकधर्म तथा स्वाधीनताका झण्डा अपने कन्धेके बल जितनी हो सके ऊँचा फहराता रखा; अपने राज्यका विस्तार किया और विद्या, कला तथा वैभवसे समृद्ध बलशाली हिन्दुराष्ट्रको बनाये रखा। हिन्दुसूर्य महाराणा हम्मीर, महाराणा संग्रामसिंग, महाराणा कुम्भा राष्ट्रपुरुष राणा प्रताप एवं महाराणा राजसिंह बाप्पाजीहीके वंशज हैं। इन सबमें महाराणा कुम्भा अनेक गुणोंसे परिपूर्ण था। उसने मालवा तथा गुजरातके मुस्लिम सुलतानोंपर विजय प्राप्तकर उनमेंसे एकको महीनोंतक कैदमें रखा था। इस विजयके स्मरणमें एक 'कीर्तिस्तंभ' भी उसने बनवाया है, जो राजपूत शिल्पकलाका एक अच्छा नमूना है। राणा कुम्भा साहित्य और संगीतमें विशेषज्ञ था। उसने स्वयं रसिकप्रिया तथा संगीतराज आदि ग्रंथोंकी रचना की है। औरंगजेबको अपनी वीरताका चमत्कार दिखानेवाले राणा राजसिंहका शौर्य तो प्रसिद्ध है। उसी तरह, उसके बनवाये 'राजसमुद्र' तथा 'जयसमुद्र' से इस राजवंशका प्रजाप्रेम भी व्यक्त होता है। सती पद्मिनी तथा साध्वी मीराबाई जैसे महान् महिलाओंने मेवाडके यशको और चमकाया है। चुण्डाजी तथा भीमसिंह जैसे राजपूतोंने आवश्यकता पडनेपर अपने अधिकारोंका त्याग कर आत्मत्यागकी पराकाष्ठाका परिचय दिया है। छत्रपति शिवाजी महाराज भी इसी वंशकी एक शाखामें पैदा हुए हैं। दूसरी एक शाखा नेपालमें चली गयी और उसने एक नये स्वतंत्र राज्यकी स्थापना की और आजतक वह हिन्दुओंका एकमात्र स्वतंत्र राज्य होनेसे कोटि कोटि हिन्दुओंके गर्व तथा स्फूर्तिका स्थान है।

स्वाध्याय-मण्डल, औंध (जि० सातारा) की हिंदी पुस्तकें ।

१ ऋग्वेद-संहिता	मू. ६)	डा.व्य. १।)
२ यजुर्वेद-संहिता	२॥)	॥)
३ सामवेद ,,	३॥)	।॥)
४ अथर्ववेद ,,	६)	१)
५ काण्व-संहिता	४)	॥=)
६ मैत्रायणी सं०	६)	१)
७ काठक सं०	६)	१)
८ तैत्तिरीय सं०	६)	१)
९ दैवत-संहिता १ म भाग	६)	१॥)
१० ,, ,, २ य भाग	६)	१॥)
ऋग्वेदका सुबोध भाष्य		
१ मधुच्छन्दा ऋषिदर्शन	१)	।=)
२ मेधातिथि ,,	२)	॥=)
मरुद्देवता-(पदपाठ, अन्वय, अर्थ)		
१ मंत्र-संग्रह, समन्वय, मंत्रसूची, तथा हिंदी अनुवाद	मू. ७)	१॥)
२ मंत्र-संग्रह तथा हिंदी अनुवाद	५)	१)
३ हिंदी अनुवाद	४)	॥।)
४ मंत्रसमन्वय तथा मंत्रसूची	२)	॥)
संपूर्ण महाभारत	७५)	
महाभारतसमालोचना (१-२)	१॥)	॥)
संपूर्ण वाल्मीकि रामायण	३०)	६।)
भगवद्गीता (पुरुषार्थबोधिनी)	१०)	१॥)
गीता-समन्वय	२)	॥)
,, श्लोकार्धसूची	॥=)	=)
गीताका राजकीय तत्त्वालोचन	१)	॥)
Bhagavad Gita	Rs. 15/-	
अथर्ववेदका सुबोध भाष्य ।	२४)	४॥)
संस्कृतपाठमाला ।	७॥)	।॥=)
वै. यज्ञसंस्था भाग १	१)	।)
छूत और अछूत (१-२ भाग)	१)	॥)
योगसाधनमाला ।		
१ योगके आसन । (सचित्र)	२॥)	।=)
२ ब्रह्मचर्य ।	१॥)	।-)
३ योगसाधनकी तैयारी ।	१)	।-)
४ सूर्यभेदन-व्यायाम	॥।)	=)

देवतापरिचय-ग्रंथमाला		
१ रुद्रदेवतापरिचय	॥)	=)
२ ऋग्वेदमें रुद्रदेवता	॥=)	=)
३ देवताविचार	।)	-)
४ अग्निविद्या	२)	॥)
बालकधर्मशिक्षा		
१ भाग १ =) तथा भाग २ =)		=)
२ वैदिक पाठमाला प्रथम पुस्तक	।)	-)
आगमनिबंधमाला ।		
१ वैदिक राज्यपद्धति	।=)	-)
२ मानवी आयुष्य	।)	-)
३ वैदिक सभ्यता	।॥)	=)
४ वैदिक स्वराज्यकी महिमा	॥=)	=)
५ वैदिक सर्पविद्या	॥=)	=)
६ शिवसंकल्पका विजय	॥=)	=)
७ वेदमें चर्खा	॥=)	=)
८ तर्कसे वेदका अर्थ	॥=)	=)
९ वेदमें रोगजंतुशास्त्र	।)	-)
१० वेदमें लोहेके कारखाने	॥)	-)
११ वेदमें कृषिविद्या	।)	-)
१२ ब्रह्मचर्यका विघ्न	=)	-)
१३ इंद्रशक्तिका विकास	॥।)	=)
उपनिषद्-माला ।		
१ ईशोपनिषद् १॥) २ केन उपनिषद् १॥)		।-)
१ वेदपरिचय- (परीक्षाकी पाठविधि)		
१ भाग १ ला	१॥)	॥)
२ ,, २ रा (समाप्त)	१॥)	॥)
३ ,, ३ रा	१॥)	॥)
२ वेदप्रवेश (परीक्षाकी पाठविधि)	५)	।॥)
३ गीता-लेखमाला ५ भाग	६)	१॥)
४ मायानन्दी भगवद्गीता १ भाग	१)	।=)
५ सूर्य-नमस्कार	।॥)	=)
६ ऋगर्थ-दीपिका (प. जयदेव शर्मा)	४)	॥)
शतपथबोधामृत	।=)	-)
अक्षरविज्ञान	१)	।=)
यजुर्वेद अ ३६ शांतिका उपाय	॥।)	=)

Regd. No. B. 1463

मुद्रक और प्रकाशक- व० श्री० सातवलेकर, भारत-मुद्रणालय, औन्ध.